यादें

डा० हरनारायण सक्सेना

ॐ

यादें

लेखक :

संत दासानुदास डॉ० हरनारायण सक्सेना
जयपुर

प्रकाशक :

रामाश्रम सत्संग संस्थान
फतेहगढ़

केन्द्रीय कार्यालय :

1/45, महात्मा श्री रामचन्द्र मार्ग, फतेहगढ़ – 209601
द्वारा सक्सेना ब्रादर्स B-59, देवनगर टोंक रोड़
जयपुर – 302018

तृतीय संस्करण सन् 1996 ई०

परम सन्त डॉ॰ हरनारायण जी सक्सेना

जयपुर

https://harnarayan-saxena.com/books%2C-video-and-audio

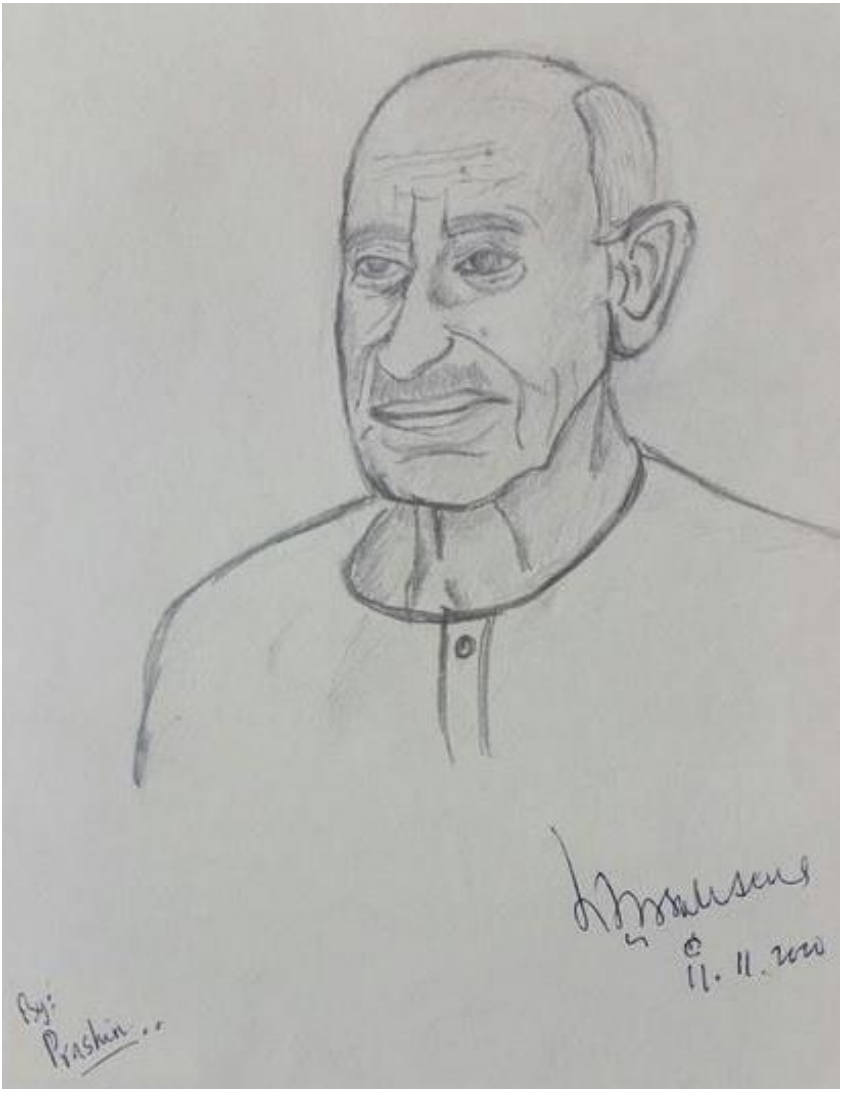

By:
Prashin..

यादें

प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित सब सन्तों के अतिरिक्त लेखक को समय के सभी सन्तों का सम्पर्क मिला तथा उनकी कृपा दया प्राप्त हुई। जिन सन्तों के संस्मरण इस पुस्तक में लिखे गये हैं उन्हें इस संसार से गये वर्षों हो गये, उनसे लेखक का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

आध्यात्म मार्ग में यादों के माध्यम से अपने ध्येय को पहुँचना कैसे सरल हो जाता है यह सब आपको इस पुस्तक में मिलेगा।

आध्यात्मिक संकलन भाग 1 तथा 2

गत 25 वर्षों में समय-समय पर आध्यात्मिक मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखक के अमूल्य लेखों का संकलन है। इनके द्वारा आध्यात्म के बहुतेरे उन रहस्यों का उल्लेख है जिनके द्वारा अभ्यासी शिघ्रातिशीघ्र अपने आध्यात्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकते हैं। आध्यात्म के गूढ़ रहस्यों तथा सरल सुलभ साधनों का विवरण सविस्तार वर्णन आपको इन लेखों में मिलेगा।

रामाश्रम सत्संग की सभी शाखाओं में इन पुस्तकों को आदर मिला है।

समर्पण

ब्रह्मलीन परम पिता परमात्मा समर्थ सद्गुरु परम संत
महात्मा श्री 1008 श्री श्रीमान रामचन्द्र जी
(श्रीमान लाला जी) महाराज के 56 वें
वार्षिक भंडारे के पावन पर्व पर
उनकी पुण्य स्मृति में उनके
एक अकिंचन
दास
की
विनम्र
भेंट
!

हरनारायण
17 अप्रेल. 1981
शुभ शुक्रवार

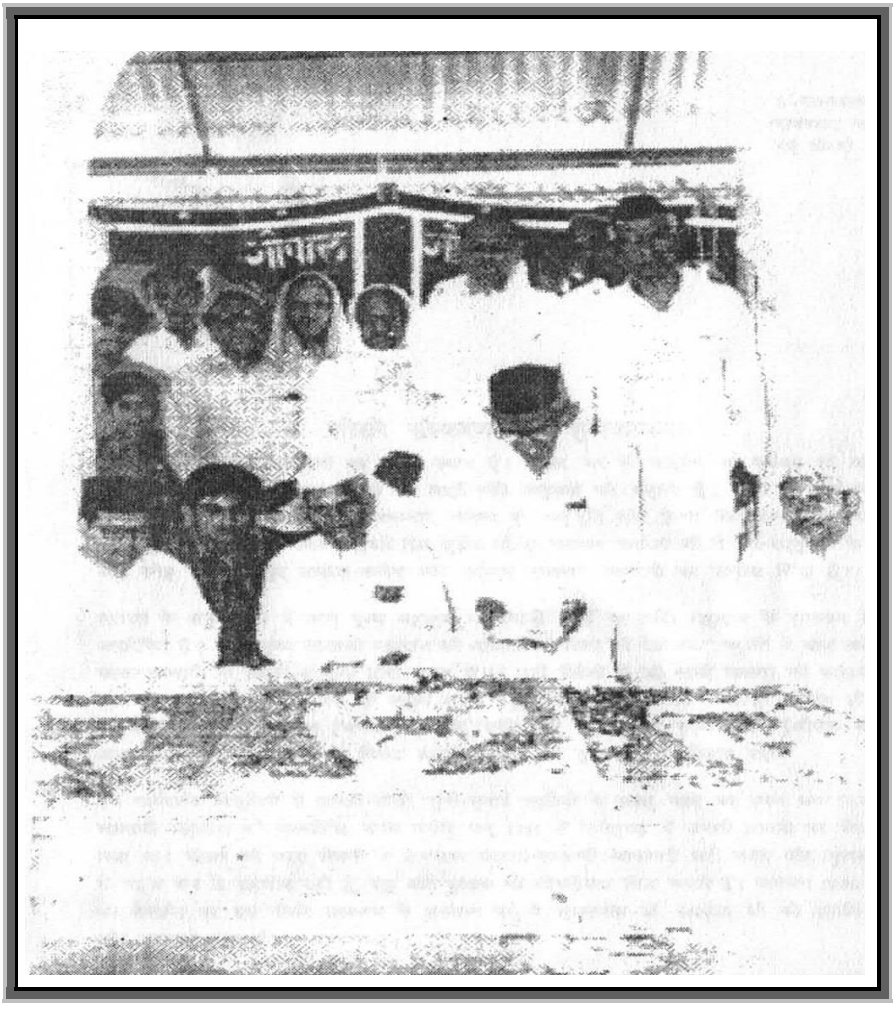

17 अप्रैल सन् 1981 का 36 वें वार्षिक भंडारे पर, डा॰ हरनारायण सक्सेना, गुरुदेव की समाधि पर अपनी पुस्तक 'यादें' की प्रतियाँ समर्पित कर रहे हैं। साथ में महात्मा नरेन्द्र मोहन (खड़े) तथा महात्मा दिनेश कुमार तथा डाक्टर बी॰ बी॰ लाल बैठे हुए।

रामाश्रम सत्संग (रजि०)
रजिस्टर्ड आफिस, गाजियाबाद (उ० प्र०)

डॉ: करतार सिंह
आचार्य एवं अध्यक्ष

8 - रतनलाल बिल्डिंग,
रामनगर पहाड़गंज
नई दिल्ली - 110055

तीसरे संस्करण हेतु शुभकामना

मनुष्य के जीवन में संस्मरणों का विशेष स्थान है। संसार भर के साहित्य का कलेवर भी अधिकतर स्मृतियों के आधार पर बना है जो कि खट्टे-मीठे अनुभवों की कहानी है। इनमें से मधुर यादें तो संजो ली जाती हैं क्योंकि उनसे बारम्बार आनन्द की अनुभूति और प्रेरणा मिल सकती है। ऐसी ही सुखद पुस्तक है – "यादें" जिसमें हमारे प्रिय श्रद्धेय डॉ० हरनारायण सक्सेना जी ने संत-सद्गुरुओं के सत्संग और स्नेह से प्राप्त हुए उपदंश-संदेश और परमार्थ सम्बन्धी संस्मरणों का उल्लेख किया है।

संत मत के अनुयायियों में परम पूज्य महात्मा रामचन्द्रजी (उर्फ़ लालाजी) महाराज के शुभ नाम से कौन अपरिचित है ? परम पूज्य लालाजी महाराज की आध्यात्मिक-शिक्षा की देदीप्यमान ज्योति से आज अनेकानेक शाखा-संस्थानों के सेवकों-आचार्यों द्वारा भारत में ही नहीं विदेशों में भी लाखों साधकों की परमार्थ-यात्रा प्रकाशमान है। डॉ० सक्सेना को ऐसे महान समर्थ सद्गुरु से शिक्षा-दीक्षा तो मिली ही - साथ ही उनके अनुज महात्मा रघुबर दयाल (चच्चा जी) और चचेरे भाई महात्मा डॉ० कृष्ण स्वरूप (श्रीमान जी) एवं अन्य समकालीन महानुभावों के निकट सम्पर्क-सम्बन्ध का सुअवसर भी मिलता रहा।

इन मार्गदर्शक विभूतियों से समझो-सीखो, सुनी-सुनाई स्मृतियों के "यादें" का प्रथम अंक परम पूज्य लालाजी महाराज की जन्मतिथि, वसंत पंचमी सन् 1981 में फ़तेहगढ़ में उनकी समाधि पर भेंट किया गया था। लेखक की बरद लेखनी से उच्चतम साधना-सम्बन्धी जानकारी बड़ी सरल और सुन्दर भाषा में सहज रूप से ग्रहणीय रही है। यह बात पुस्तक की लोकप्रियता सिद्ध करती है। लगभग 3000 प्रतियों की समाप्ति पर इस तीसरे संस्करण के प्रकाशन पर मैं आदरणीय डॉ० सक्सेना जी को हार्दिक बधाई और साधुवाद देता हूँ।

मेरी शुभकामना और ईश्वर से प्रार्थना है कि भाई साहब को इस पावन आध्यात्मिक विचारधारा के प्रसार-प्रचार करते रहने के लिये उनकी सशक्त लेखनी को बल दें तथा उन्हें चिरायु और स्वास्थ्य प्रदान करे।

(करतार सिंह)
अध्यक्ष आचार्य
रामाश्रम सत्संग. ग़ाजियाबाद

रामनगर, नई दिल्ली
दिनांक : 22 मार्च 1996

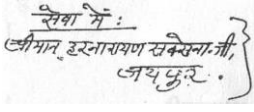

विषय सूची

1. भूमिका 17
2. परम सन्त सद्गुरु श्रीमान महात्मा रामचन्द्र जी महाराज 28
3. परम सन्त सद्गुरु श्रीमान महात्मा रघुवर दयाल जी महाराज 53
4. श्रीमान ज़नाब परम सन्त हाजी मौलाना अब्दुल ग़नी ख़ाँ साहिब 88
5. परम संत महात्मा डॉ॰ कृष्णस्वरूप जी महाराज 106
6. परम पूज्य भाई साहब श्रीमान ठाकुर रामसिंह जी 124
7. पुलिस का फंदा . . . . मेरा उद्धार 148
8. उपसंहार 155
9. परिशिष्ट 160
10. परिशिष्ट 164
11. पारिवारिक वंशावली 170
12. आध्यात्मिक वंशावली 173

प्रकाशक का वक्तव्य

प्रथम संस्करण

रमेशचन्द्र माथुर

पत्रकार, क्षेत्रीय प्रतिनिधि, टाइम्स आफ इण्डिया,
इंडियन एक्सप्रेस, पॉयनियर, आकाशवाणी,
अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग,
रामाश्रम सत्संग संस्थान, फतेहगढ़

श्री रामाश्रम सत्संग-संस्थान फतेहगढ़ का यह प्रकाशन इस महान संकुल तथा इसकी विभिन्न शाखा प्रशाखाओं द्वारा अब तक प्रकाशित अनेकानेक सुरुचिपूर्ण सत्साहित्य के प्रकाशन की परम्परा में एक अभिनव प्रयोग है।

इस प्रकाशन से एक नई माला शुभारंभ हो रही है जो इस प्रकार के प्रकाशनों द्वारा जिज्ञासुओं और साधनों की आध्यात्मिक तृप्ति एवं संतोष की सामग्री उपलब्ध करा सकेगी। हमें आशा है कि पूर्व प्रकाशनों की भाति ही इसका स्वागत होगा तथा हम अपने प्रयास में अग्रसर होने के लिये अपेक्षित प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे। प्रकाशन की सुन्दर प्रिंटिंग तथा समय से उपलब्ध कराने के सुप्रयास के लिए मुद्रण संस्था के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

रमेशचन्द्र माथुर

प्रथम संस्करण

संस्था की ओर से-

दिनेश कुमार सक्सेना

पौत्र ब्रह्मलीन समर्थ सतगुरु महात्मा श्रीमान रामचन्द्र जी महाराज
अध्यक्ष, रामाश्रम सत्संग-संस्थान, फतेहगढ़

सुखद अनुभूति की आकंठ तृप्ति अनायास ही अभिव्यक्ति की पयस्वनी बन जाती है। प्रदर्शन और प्रकाशन इसका हेतु नहीं होता। होती है वस्तुतः वह तरिक आत्मीयता एवं अपनत्व जिसके प्रेयस श्रेयस परिवेश में साधक अपने सभी अपनों को ले आना चाहता है। ये अपने प्रेम की व्यापक परिधि में विकीर्ण किसी परिवार की सीमा में आबद्ध नहीं होते। मानव मात्र की कल्याण कामना ही प्रत्येक साधक का मुख्य लक्ष्य होता है।

ब्रह्म-विद्या द्वारा जो दिव्य एवं सुखद अनुभूति साधक को होती है, उसका प्रत्यक्ष प्रतिफलन उसके आचार विचार में होता है। वह रागद्वेष से उपर उठ कर मानव मात्र का जन्म-जात प्रेमी बन जाता है। उसे प्रत्येक मानव में अपने आराध्य के दर्शन होते है और गद्गद् हो उठता है।

बह्म-विद्या युगों-युगों तक परम गोपनीय तथा व्यक्तिगत रहस्य की स्थिति में अवस्थित रही। अधिकारी पात्रों की खोज रही तथा वे वही गिने चुने व्यक्ति लाभान्वित हुए। इस संदर्भ में परमपिता परमात्मा प्रातः स्मरणीय श्रीमान लाला जी महाराज का दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ और आज पूरे विश्व में उनके साधन और सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है। लाखों साधक और भक्त आत्म कल्याण के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तत्पर हैं।

इस संस्थान तथा इस महान संकुल की सभी शाखा प्रशाखाओं को ऐसे परम संत महात्माओं का सुयोग मिलता रहा है, जिन्होनें इस विद्या से प्राप्त अपनी

दिव्य अनुभूतियों को वाणी देने की कृपा की। बड़े सौभाग्य की बात है कि स्वयं पूज्यपाद श्रीमान लाला जी महाराज के प्रकाशनों से यह परम्परा प्रारम्भ हुई तथा अविरल रूप से आज भी गतिशील है।

स्वनामधन्य श्री डॉ० हरनारायण जी उच्च कोटि के साधक तथा इस विद्या के अधिकारी पुरुष हैं। वे परम पूज्य लाला जी महाराज तथा परम पूज्य चच्चा जी महाराज, दोनों युग पुरुषों के परम प्रिय और निकटतम महानुभावों में रहे हैं। इनको दीन और दुनिया का जो सम्मान उन महानुभावों की ओर से सुलभ हुआ वह स्वयं इनकी महानता का सूचक है। उन्होंने बड़ी कृपा पर अपनी कृति यादें संस्थान को अर्पण करने का शुभ संकल्प किया और इससे प्राप्त आर्थिक लाभ का संस्थान को अधिकारी बनाया। संस्थान के वे इतने अपने है कि उन्हें धन्यवाद देना भी एक धृष्टता होगी। श्रद्धेय डा० हरनारायण जी ने प्रस्तुत कृति में साधना का एक सुन्दर उपाय सुझाया है। सहज साधना की विशेषता ही यह है कि वह अनायास एवं अप्रयास होकर सहज है। फिर यादों के माध्यम से उसको और भी सहज और स्वतः स्फूर्त बनाने का उनका यह अभिनव प्रयास तो विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यदि जिज्ञासु एवं साधक केवल यादों को ही साधन का माध्यम बना लें, बड़ी सरलता से बन भी जाता है, तो अति अल्प समय में ही उनकी आध्यात्मिक उन्नति निश्चय ही होगी, करके तो देखें।

प्रस्तुत कृति 56 वें वार्षिक भण्डारे के शुभ अवसर पर प्रस्तुत की जा रही है। यह बड़ा सुखद संयोग है। और इस रूप में इस कृति का और भी अपना महत्व है। हमें पूर्ण विश्वास है कि कृति लेखक जब इस पुष्प को समाधि पर अर्पण करेंगे तो उनकी आंतरिक साध एवं ललक निश्चय ही फलवती होगी-

"विनय पत्रिका" दीन की, बापु ! आपु ही बांचो
हिये हेरि तुलसी लिखी, सो सुभाय सही करि
बहुरि पूछिये पांचो॥

लेखक के साथ मुद्रक की भी ललक बड़ी मर्मस्पर्शी हैं – "कभी भूले भटके

एक याद हमारी भी"। इस कामना में मुद्रक के माध्यम से जन-जन की आर्त्त प्रार्थना प्रस्तुत हुई। हम समर्थ सद्गुरु भगवान श्री लाला जी महाराज से आग्रह करते हैं कि भण्डारे के इस पावन पर्व पर भी अपनी दया व कृपा से डा॰ बी॰ बी॰ लाल की जन प्रार्थना भी स्वीकार करें, जन-जन की झोली मुरादों से भर दें।

7-4-1981 **दिनेश कुमार**

द्वितीय संस्करण

प्रकाशक तथा संस्थान की ओर से-

श्रीमती सुमन सक्सेना M०A०, Ph०D०

सचिव प्रेस एवम् प्रकाशन
रामाश्रम संस्थान फतहगढ़ उ० प्र०

"यादें" पुस्तक का दूसरा संस्करण आपके हाथों में है। प्रथम संस्करण अप्रैल 1981 में प्रकाशित हुआ जिसे अपेक्षा से अधिक लोकप्रियता मिली। हमारे अति सीमित साधनों एवं अर्थाभाव के कारण प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन में अप्रत्याशित विलंब हुआ जिसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

इस संस्करण में लेखक द्वारा "यादों" की कुछ और लड़ियाँ भी पिरोई गई है। विषय सामग्री बड़ी है। कुछ चित्र भी उपलब्ध हैं। इधर प्रकाशन मूल्यों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। अतएव खेद के साथ पुस्तक-मूल्य में भी वृद्धि करना आवश्यक हो गया।

धार्मिक ग्रन्थों विशेषकर योग विषयक ग्रन्थों का अपना अलग ही अस्तित्व होता है। उनकी विषय-सामग्री, तत्सम्बन्धित शैली एवं प्रस्तुति इत्यादि सामान्यतः ऐसी शास्त्रीय बन जाती है कि वे पूजा-पाठ मात्र की सामग्री बन कर रह जाते है। उनमें वर्णित उपदेशों को जीवन में उतारने की बात बन ही नहीं पाती।

मानसकार की लेखनी भी इस तथ्य को ही उजागर करती है।

सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यों कीर मरकट की नाई।
जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
जब ते जीव भयउ संसारी। छूटै ग्रन्थि न होई सुखारी॥
श्रुति पुरान बहु कहउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरूझाई॥

[मानस 7-116 (ख) 3 -6]

ऐसे दुर्गम मार्ग पर कैसे चला जाये ? जिस साधन विधान की ऐसी कठिन रूपरेखा प्रस्तुत की गयी हो, उसे पढ़ कर ही असमंजस में पड़ जाते हैं। कैसे बन पड़ेगी हम से ? मार्ग कोई भी क्यों न हो, वह तो केवल यात्रा की योजना और दिशा ही निश्चित कर सकता है। अभीष्ट को पथिक के समक्ष प्रस्तुत कर देने की सामर्थ्य उसमें निहित नहीं होती। उसके लिए तो पथिक को ही बढ़ना होगा मार्ग को नहीं। किन्तु इस जिज्ञासा का भी कुछ कम महत्व नहीं। इन परिस्थितियों में मन की कामना और कल्पना होती है कि कोई ऐसा सहज मार्ग मिल जाए जो स्वयं ही जीवन की उच्च शिक्षा बन जाए। किसी ऐसे कुएं का पता लग जाए जो स्वयं प्यासे तक चलकर पहुंच जाए।

"किसी को अपना बना लो या किसी के हो रहो" के साधन का निर्देश करके पूज्य पाद श्री लाला जी महाराज ने सम्भवतः इसी सहज मार्ग की ओर संकेत किया है।

"के तोई लागहिं राम प्रिय, के तू राम प्रिय होय"

जिस मार्ग की कबीर ने "सहज-सहज सब कोई कहे, सहज न जाने कोय" कहा किन्तु कोई समझा न पाया। तुलसी ने बार-बार उस पर चलने का आव्हान किया किन्तु कोई आगे न आया। **शाहजहांपुर वाले पूज्य बाबूजी साहब महात्मा श्री रामचन्द्र जी द्वारा सहज मार्ग की व्याख्या दो शब्दों में इस प्रकार की गई है -**

"मेरे मालिक की सतत उपस्थिति एवं एकनिष्ठ सान्निध्य।"

"यादें" शीर्षक से प्रस्तुत कृति के प्रस्तुतकर्ता ने सहज मार्ग के इस तात्विक स्वरूप को भली-भांति पकड़ा है और इस दृष्टि से इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। प्रस्तुत कृति के लेखक ने जिन समर्थ सद्गुरुओं को अपनी "यादों" के माध्यम से आपके समक्ष प्रस्तुत किया है, वे सभी एक महान सिलसिले की जीवन्त कड़ी हैं। आज भी वे किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। यह एक ऐसा सिलसिला है जो आदिकाल से चला आ रहा है और अन्त तक चलता

रहेगा। पूज्यपाद श्री लाला जी महाराज अपने सद्गुरु देव के लिए एक स्थान पर लिखते हैं- "उनकी हर अन्दर आने वाली सांस लोगों के दिलों की स्याही को सूत कर बाहर फेंक देने वाली थी और हर बाहर जाने वाली सांस अमृत की धार को दिल, दिमाग और रगों पट्ठों में गति देने वाली थी। वे जिस्म में रहकर अपना काम कर गए और अब आजाद होकर उसी काम में सरगर्म हैं। जो जान सकता हो जाने, और जो देख सकता हो, देखे।"

कुछ संजोग ऐसा आ पड़ा कि लेखक ने प्रस्तुत कृति में जिन समर्थ सद्गुरुओं की यादें आप तक पहुँचाने की चेष्टा की है, वे सभी अपनी भौतिक जगत की लीला समाप्त करके इस असार संसार से पर्दा कर चुके हैं। ऐसी शंका उत्पन्न हो सकती है कि इन यादों के माध्यम से हम उनसे सम्पर्क कैसे स्थापित कर सकते हैं। बड़ा असम्भव कार्य है। पूज्य श्री हरनारायण जी (लेखक) की बात और है। ये सभी संत उनके समय के थे। उन्होंने उनकी यादें संजोयी, उनकी अपनी बात है। किन्तु एक बार पुनः यह भय है कि यह भी अन्य पुस्तकों की भांति पूजापाठ की सामग्री बन कर न रह जाए। जीवन में उतारने वाली बात न बन सके और सारा परिश्रम व्यर्थ चला जाये।

भली भांति समझ लीजिए कि सन्त कभी नहीं मरते। वे तो केवल स्थूल शरीर को त्याग कर सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाने पर अधिकाधिक शक्ति से अपने अनुयायियों का पथ-प्रदर्शन करते रहते हैं।

अस्तु अब मेरी यही कामना है कि आप भी अपनी यादों की माला इसी प्रकार पिरोयें जैसी प्रस्तुत कृति के लेखक ने की है और उसमें रमण करें। तभी सही अर्थों में इस प्रकाशन की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी।

तन्मेमनछः शिव संकल्पमस्तु ।
अभीप्सा सिद्ध हो और ऐसा ही हो ॥

विनीता

सुमन

भूमिका

याद रख भूल मत

सत्संग के इन चार शब्दों में क्या जादू भरा है, यह बात थोड़ी देर से समझ में आती है। शब्दों और उनके अर्थ को समझ लेना पर्याप्त नहीं है। इसे अपने जीवन में उतारना चाहिये। यह सब सत्संग और अभ्यास से सरलता से समझ में आ जाता है। 'सत्संग' शब्द के संस्कृत में दो भाग हैं। 'सत' जिसका अर्थ है जो सदा से विद्यमान है-था भी, है भी और भविष्य में भी सदा रहेगा। संग का मतलब साथ से है। हमें जहाँ इस 'सत्' का संग मिले वही 'सत्संग है।' सत् कहाँ मिलेगा ? जिस महापुरुष का सम्पर्क सत् से है ऐसे महापुरुष के संग में रहना 'सत्संग' है। ऐसे महापुरुष अथवा सत्पुरुष के शरीर से हर समय प्रकाशमय शान्ति की किरणें या धाराएं निकलती रहती हैं, और जो भी इनके सम्पर्क में आते हैं उन्हें ओत-प्रोत करती हैं। हम संसार के प्राणियों के लिये यही सौभाग्य सुलभ है, जिसे भी मिल जावें उसका अहोभाग्य है।

ऐसे महापुरुषों का (जिन्हें हम अपनी भाषा में सद्गुरु कहते हैं सम्पर्क मिल जाने के बाद हमें चाहिए कि उनके सत्संग का पूरा लाभ उठायें। ऐसा सम्पर्क स्थापित करें कि जिसमें विछोह न हो। हमें दुनियादार होने के नाते अन्य कर्त्तव्य अथवा ज़िम्मेदारियाँ भी निभानी पड़ती हैं, जिनके कारण सद्गुरु के साथ नहीं रह सकते। अतः जितना भी शारीरिक सम्पर्क रख सकें, रखें तथा पास न हों तो मानसिक सम्पर्क रखें, अर्थात् मन में याद रखें।

संसार के अन्य कार्यों को करते हुए यह सम्पर्क कैसे कायम रहे, इस विषय में ही हम कुछ सुझाव आपके सम्मुख रखना चाहते हैं। हमारे अनुभव की साधारण सी बातें हैं, परन्तु हमें विश्वास है कि आप सब भी इनसे अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

जब आप उनके सम्पर्क में रहें तो उनके प्रत्येक कार्य को बहुत पास से देखें और याद करते जाँय। वे कैसे बोलते हैं ? कौन से शब्द, वाक्य उनके मुख से अधिकतर निकलते हैं ? वे कैसे उठते बैठते हैं ? कैसे खाते पीते हैं ? कैसे चलते हैं

? नवागन्तुकों तथा पुराने सत्संगियों तथा अन्य कुटुम्ब के सदस्यों से कैसा और क्या व्यवहार करते हैं ? कैसे कपड़े पहनते हैं ? इत्यादि । इन सब बातों को हम अपने निजी जीवन में अनुकरण करने का प्रयास करते रहें और साथ में यह भी सोचते जावें कि हमारे गुरुदेव ऐसे खाते, ऐसे चलते, ऐसे बात करते हैं, इत्यादि। यह एक तरीका उनकी याद दिलाते रहने का है।

उनके कार्यों तथा उनकी बातों की चर्चा अपने सत्संग के साथियों में करते रहना भी उनकी याद करने का साधन है। यह सब श्रद्धा की धारणा से तथा उनके प्रति अपने हार्दिक प्रेम से आप करें तो उनका सम्पर्क मानसिक रूप से स्थापित होता रहेगा और उसका लाभ आपको मिलता रहेगा।

उनकी कुछ विशेष बातें, जो सांसारिक व्यवहार की हों जैसे अमुक पदार्थ उन्हें पसन्द हैं, अमुक के लिए उनकी ओर से निषेध है, आदि को याद रखना। जैसे ही वह पदार्थ सामने आये उनकी याद आ जाये।

ये कुछ बातें जो हमने विशेष रूप से लिख दी हैं, केवल उदाहरण के रूप में हैं । हमारे लेखों में आपको बहुत सी बातें मिलेंगी, अगर आप गुरु सम्पर्क की विशेषताओं को नोट कर लें तो गुरु कृपा से आपको अपना अभ्यास पक्का करने में सहायता मिलने की हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है।

हमें जिन महापुरुषों के सम्पर्क का सौभाग्य मिला है उन सभी के विषय में हम अपनी यादें लिख कर आपके सम्मुख रखना चाहते हैं। विषय लम्बा अवश्य है। परन्तु हमें आशा है कि इन सब के अवलोकन से आपको अपना जीवन मार्ग स्वयं ही निश्चित करने में निश्चित रूप से सहायता मिलेगी।

हमने पढ़ा है कि सनातन धर्म के एक बड़े सुधारक स्वामी रामानन्द ने लगभग 700 वर्ष पहले साधु समाज की वैरागी संस्थाओं में पड़ी इस परम्परा को बदला, कि केवल ब्राह्मण ही वैराग्य में दीक्षित हो सकता है। तब से सभी जाति के लोग इसमें दीक्षा लेने लगे। दीक्षा लेने के बाद उनकी कोई जाति नहीं रहती। वे केवल वैरागी रह जाते हैं और आप जो चाहें उनकी जाति समझ लें। उनका कहना

था कि :-

जाति पति पूछे नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई॥

आध्यात्म में (विशेष कर सन्त मत या सूफी मत में) कोई जाति पति का विचार नहीं होता। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी इस मार्ग के अभ्यास को करते हैं और लाभ उठाते हैं। हमारे इस सिलसिले में भी बड़े-बड़े मुसलमान सन्त हुए हैं, जिन से हमारा भी सम्पर्क रहा है और उनके द्वारा हमें आध्यात्मिक मार्ग में यथेष्ट लाभ हुआ है। अतः हमें अपने हृदय से और मन से धर्म के इस बाहरी स्वरूप को निकाल देना चाहिए अन्यथा इस चक्कर में हम उस लाभ से वंचित रह जावेंगे जो हमें सरलता से मिल सकता है। इस सन्यासी प्रथा आदि की चर्चा हमने यहाँ इसी कारण आवश्यक समझी कि आप भी 'हरि को भजे सो हरि का होई' के अनुयायी हो जावें और किसी प्रकार की धृणा अथवा तुच्छ विचार इस विषय में हो तो उन्हें अपने मन से निकाल बाहर करें।

एक दृष्टांत इस विषय में आपके सम्मुख रखें। एक मुसलमान सन्त फारस (Persia अब Iran) देश से भारत आये केवल कबीर साहब से मिलने के लिए। जब वे उनके नगर में घुसे तो कबीर साहब को खटका हुआ। ऐसे सन्तों को, की जिनका सम्बन्ध परम शक्ति से हो चुका होता है, सारी बातें अपने आप ही ज्ञात हो जाती हैं। प्रकृति माता उनकी अनुचरी के रूप में उनकी इच्छा आज्ञा जानने की प्रतीक्षा करती रहती हैं। परन्तु वे इस ओर ध्यान ही नहीं देते। उन्हें अपने प्रियतम की याद से अवकाश कहाँ ?

कबीर साहब ने लड़की को भेज कर पास में रहने वाले एक मेहतर को बुलवाया और कहा कि हमारे दरवाजे पर खूँटा गाड़ कर एक सूअर बाँध दो। उनकी आज्ञानुसार सूअर द्वार पर बाँध दिया गया। इतने में वे मुसलमान सन्त आ पहुँचे। पूछा तो लोगों ने कबीर साहब का मकान बतला दिया। देखा सूअर बंधा है तो "ला हौल विला कुब्बत" पढ़ा और वापस लौट पड़े। तुरन्त ही ध्यान आया कि इतनी दूर से इतना कष्ट पा कर तो यहाँ पहुँचे और जिन से मिलने आए उनसे बिना मिले कैसे चले जाएँ ? लौट पड़े और दरवाजे पर दस्तक दी। कबीर साहब तो उनकी प्रतीक्षा

में थे ही बोले "चले आइये।"

कबीर साहब ने उनका सन्तों के अनुरूप ही स्वागत किया। परन्तु जब बात करने बैठे तो हृदय में चुभती हुई वह बात उन आगन्तुक सन्त के मुख से निकल ही पड़ी। उन्होंने पूछा "आपने यह गलीज (अपवित्र) पशु अपने दरवाजे पर क्यों बाँध रखा है ?" कबीर साहब ने कहा, "श्रीमान क्षमा करें - मैंने इसे घर के बाहर बाँध रखा है। आप तो इसे अन्दर बाँध कर लाये हैं।" वे सन्त लज्जित हुए और कबीर साहब के वचनों से उन को एक धक्का लगा। अपनी भूल स्वीकार की और कबीर साहब से कहने लगे "आपने सचमुच मेरी आँखें खोल दी।"

सूअर घृणा का प्रतीक है, हमें चाहिये कि घृणा अपने मन से निकाल कर बाहर कर दें जिससे हमारा मन शुद्ध हो जाये। तब उसमें आध्यात्म की किरणों और धाराओं को स्थान लेने के लिए बहुत सा स्थान खाली मिल जायेगा।

आध्यात्म के लिए एक बात की और आवश्यकता है, वह है शुद्धता। सबसे पहले हमारे विचार तो शुद्ध होने ही चाहिए क्योंकि हमारा सारा कार्य केवल ध्यान (ख्याल) से ही होता है। यदि मन की अवस्था विक्षिप्त है तो ध्यान कैसे लगेगा ? इसी ध्यान को (या यों कहिए कि मन को) एकाग्र करने के लिए ही तो हम यह सारा प्रयत्न करते हैं। परन्तु इसके साथ-साथ शरीर की सफाई का भी बड़ा महत्व है। इस ओर हमारे सारे सद्गुरु और उनके शिष्यों ने विशेष ध्यान रक्खा है और समय-समय पर इसके लिए आदेश भी दिए हैं। बातें तो वही हैं जिन्हें आप हम जानते हैं, परन्तु इनमें से जो जो भी आप ने अपने गुरुदेव को स्वयं करते हुए देखा है, आपके लिए उनका महत्व अधिक है। यह सब तो आपको अपने जीवन में उतार ही लेना चाहिए कि हमारे गुरुदेव इस कार्य को इस प्रकार करते थे।

सन्तों के विचार आपको सब जगह एक से ही मिलेंगे, वे किसी भी जाति या देश के हों। देशों की परम्परा, भाषा, समाज के रहन-सहन तथा समय के अनुसार थोड़ा बहुत भेद उनमें रहा हो परन्तु सभी ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्था, उसको पाने की चेष्टा, समाज में समानता, सेवा, सत्य, दया आदि का उपदेश देते आए हैं, रही ईश्वर को पाने की बात उसके लिए अलग-अलग रास्ते हो सकते हैं और

होते भी हैं। इन सब में सरल मार्ग हमारी समझ में तो 'प्रेम' का ही है। और यही हमारे इन सन्तों का मार्ग रहा है, जिनके विषय में हम चर्चा कर रहे हैं। इस विषय में हमारा एक लेख शीर्षक 'प्रेम राम सन्देश (गाजियाबाद से प्रकाशित) के जून 1977 के अंक में भी निकल चुका है। पाठकों ने पढ़ा होगा। हम इस लेख के भाग 7 में प्रस्तुत कर रहे हैं।

यह सारी कहानी जो आगे आ रही है, मैंने इस अभिप्राय से कदापि नहीं लिखी है कि पाठक मुझे कोई विशेष अथवा असाधारण योग्यता वाला व्यक्ति समझने की गलती कर बैठें। मैं आप सबसे छोटा, अपने ही दुष्कर्मों पर लज्जित, उन गुरुदेव की दया का भिखारी, अति दीन दुखी तथा आप सब का सेवक मात्र हूँ। कुछ उन्हीं की प्रेरणा से यह सब आपकी सेवा में निवेदन करने का साहस किया है। आप में से किसी को भी इससे प्रेरणा मिल सके तो मैं अपने इस प्रयास को पूर्ण-रूप से सफल मानूंगा।

ये सब लिखने की प्रेरणा भी उन्हीं की है, अन्यथा मुझ में यह योग्यता कहाँ कि ये शब्द अथवा भाषा आप सबके सम्मुख रख सकूं। मेरी मान्यतानुसार सब कुछ उन्हीं की इच्छा तथा निर्देश के अनुसार लिखा जा रहा है। इसमें जो भूलें और त्रुटियाँ हैं, वे अवश्य ही मेरी है इनके लिए मैं आप सबसे क्षमा प्रार्थी हूँ।

- हर नारायण

प्राक्कथन

प्रथम संस्करण

मेरे लेख 'यादें' शीर्षक से ग़ाजियाबाद से प्रकाशित आध्यात्मिक पत्रिका 'राम संदेश' में सन् 1977-78 तथा 1978-79 में छप चुके हैं। कुछ मित्रों ने मुझ से आग्रह किया कि इन्हें एक पुस्तक रूप में दे कर उपलब्ध करावें, जिससे यह इस मार्ग पर चलने वालों के लिए आगे पथ-प्रदर्शन का काम करें। मेरा अभिप्राय भी इन्हें लिख कर प्रकाशित करने का यही था। अतः यह पुस्तक आपके हाथ में है। यदि आपको इससे अपने आध्यात्म के अभ्यास में कुछ सहायता मिली तो मैं अपने इस प्रयत्न को सफल मानूंगा।

वैष्णव परिवार में जन्म लेने तथा सनातन धर्म कॉलेज (कानपुर) में अध्ययन के समय, वातावरण के अनुसार आरम्भ से ही मुझे इस धर्म में आस्था थी। फिर भी मूर्ति पूजा में मुझे कुछ उलझन होती थी। मैंने कुछ इधर भी देखा परन्तु अपने लिए कुछ मार्ग निश्चित करने में असमर्थ रहा। इन्हीं दिनों मेरे भाई साहिब कानपुर निवासी बाबू आनन्द स्वरूप साहब ने, जो कि कॉलेज अध्ययन के समय मेरे स्थानीय संरक्षक (Local Guardian) भी थे, अक्टूबर सन 1925 की एक शुभ संध्या को इस मार्ग के धुरन्धर पथ-प्रदर्शक परम सन्त श्रीमान चच्चा जी महाराज (श्रीमान महात्मा रघुवर दयाल साहब) के मुझे दर्शन कराये। उस समय मेरी आयु सत्तरह वर्ष की थी। आरम्भ में तो सम्पर्क इन परम सन्त से बढ़ा तथा मुझे परम सन्त श्रीमान लाला जी महाराज (श्रीमान महात्मा रामचन्द्र जी महाराज) फतेहगढ़ - निवासी के दर्शन हुए तो मुझे इस ओर अनायास ही आकर्षित हो जाना पड़ा।

सन्तों का अवतरण ही भूले भटकों के उद्धार के लिये होता है। मेरे लिए भी इन सन्तों का सम्पर्क प्रेमाकर्षण का स्रोत बना तथा मैंने सब कुछ छोड़कर इन्हीं की शरण में जाने में अपना कल्याण समझा। सन्त अपनी दया और कृपा से ही हमें वह अवसर प्रदान करते हैं। जिससे हम उस प्रेम समुद्र का आनन्द पा सके। आगे चलकर वे ही हमें सारे सांसारिक बन्धनों से मुक्त करा कर मोक्ष दिलाते तथा परम

पद तक पहुँचाते हैं।

जिन-जिन सन्तों के संस्मरण इस पुस्तक में दिये गये हैं उन्हें हमारे इस समय के बहुत से सत्संगी जानते हैं, कुछ का इनसे व्यक्तिगत सम्पर्क भी रहा है। परन्तु आगे आने वाले सत्संगी भ्राताओं में कुछ को ही यह जानकारी हो सकती है। फिर कुछ वर्षों के बाद किसी को भी यह व्यक्तिगत जानकारी न होगी। अतः मैं इन संस्मरणों के साथ-साथ इनका संक्षिप्त परिचय भी दे रहा हूँ। आशा है कि हमारे आध्यात्म से सम्बन्धित सज्जनों को ये सब विवरण लाभप्रद होगा। मेरा अनुरोध है कि इसी प्रकार अन्य सन्तों के संस्मरण भी यदि हमारे और सत्संगी भ्राता लिखें तो हमारे इस समय के तथा आगामी भ्राताओं को विशेष लाभ होगा।

जयपुर ता॰ 1 जनवरी 1981

डा० हरनारायण

प्राक्कथन

द्वितीय संस्करण

इस संस्करण में कुछ इन्हीं सन्तों की यादें और जोड़ दी गई हैं, तथा इन सन्तों के चित्र भी दिये जा रहे हैं। इनमें से संस्मरण भाग 3 में वर्णित श्रीमान क़िबला जनाब परम संत हाजी मौलाना अब्दुल ग़नी ख़ाँ साहब का चित्र नहीं दिया जा सका। कारण, कि आपका चित्र बना ही नहीं। आप इस्लाम धर्म के अनुगामी के नाते अपना चित्र नहीं बनाने देते थे। इतिहास में भी हमें मुस्लिम सन्तों के चित्र नहीं मिलते।

एक बार किसी हिन्दू अनुगामी ने आपसे चित्र के लिए प्रार्थना की तो आपका उत्तर इस प्रकार था। "मेरा फोटो ? इंशा अल्लाह मेरे जनाज़े का भी फोटो नहीं लिया जा सकेगा - मेरा फोटो कौन ले सकता है ?"

पुस्तक के भाग 7 उपसंहार की ओर हम पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हैं।

21 मार्च॰ 1988

डा० हरनारायण

प्राक्कथन

तृतीय संस्करण

रामाश्रम सत्संग संस्थान की सभी शाखाओं उप शाखाओं में इस पुस्तक को समुचित आदर मिला। फिर भी हमारे सन्त साहित्य के प्रसार प्रचार की निश्चित सीमायें हैं। इसी कारण नाटक उपन्यासों की भाँति आध्यात्म की पुस्तकों की माँग सीमित ही होती है। अतः इनके द्वारा कोई लाभ का साधन मानना कदापि उचित नहीं हैं।

21-03-88 को प्रकाशित दूसरा संस्करण भी अब समाप्त हो गया है। अतः अब तीसरा संस्करण आप सत्संगियों की सेवा में प्रस्तुत है। इसमें फिर इन्हीं सन्तों की कुछ यादें और जोड़ी गई हैं। उपसंहार में भी बहुत कुछ बढ़ाया गया है। प्रिटिंग का विशेष ध्यान रखा गया है। अतः पुस्तक का आकार थोड़ा बड़ा हो गया है। आध्यात्म की ओर रुचि होना भगवान की विशेष कृपा है। आजकल इसके गुरु भी बहुत मिलने लगे हैं और सभी अपने मार्ग को अन्य मार्गों से श्रेष्ठ बतलाते हें।

आर्यावर्त का पुराना धार्मिक साहित्य जो इस समय उपलब्ध है जीवन के अन्तिम चरण में वानप्रस्थ तथा सन्यास ग्रहण करने का उपदेश देता है। उसके पहले तो सत्य अहिंसा आदि नियमों पर ही चलना पर्याप्त मान लिया जाता है। स्थूल की पूजा से तो आर्यावर्त का साहित्य भरा पड़ा है। बहुतेरे तो ढोल मंजीरों पर कीर्तन गायन को ही अपने जीवन का अंतिम लक्ष्य मान कर संतोंष कर लेते हैं। कुछ भी न करने से यह कुछ अच्छा ही है।

हमारा मानव जीवन स्थूल से ही संबन्धित रहा है। हमें सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता भगवान, जो स्थूल नहीं है, उनके दर्शन नहीं होते। यदि वे भी स्थूल ही होते तो उनके दर्शन, उन्हें पाना सरल होता परन्तु वे तो सूक्ष्म और कारण से भी परे की स्थिति में विराजते है। यदि हम उस सूक्ष्म तथा कारण की स्थिति को प्राप्त करें, तो हम उन्हें अवश्य पा सकते हैं।

सर्वशक्तिमान जो सुख शान्ति के भण्डार हैं, उन तक हमारी पहुँच कैसे हो इसके लिये हमें स्थूल से उपर उठना तथा सूक्ष्म जो कि इस स्थूल से कई गुना बड़ा है - उसे पार करना पड़ेगा तभी उनके चरणों में पहुंचने का मानक बन पड़ेगा। इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है।

जो गुरु आजकल सर्व साधारण को उपलब्ध हैं वे सारे शास्त्रों में वर्णित साधनों को अपनाने और करने का उपदेश देते हैं। कलिकाल के मानव के लिये ये साधन सरल नहीं हैं। इनमें पग-पग पर कठिनाईयाँ आती हैं जिनका निराकरण भी उनसे पूछो तो बतला देंगे। परन्तु यह सब करना आप ही को पड़ेगा। उनसे इसमें सहायता नहीं मिलेगी।

सूक्ष्म की साधनाएँ सारी ही मन अथवा विचार के द्वारा होती हैं। मन की चंचलता के विषय में सभी जानते हैं कि इससे शीघ्रगामी तथा चंचल कोई अन्य शक्ति बनाई नहीं गई। इन शास्त्रों में बतलाये साधनों द्वारा कुछ महानुभावों ने सफलता अवश्य पाई है, परन्तु ऐसे दृष्टान्त इने-गिने ही हैं। साधारण मानव को मन के पाश से छूटना साधारणतः संभव नहीं है। इसके लिये साधन जो भी हैं, वे मन के द्वारा ही किये जाते हैं, जिन्हें मन सरलता से स्वीकार नहीं करता। हमारे शास्त्रों के अनुसार ही महामुनि नारद और महर्षि विश्वामित्र इसके उदाहरण हैं।

सन्तों का मार्ग इन सब से भिन्न है। वे हमें मन को एकाग्र करने का साधन बतला कर अपने पर ही नहीं छोड़ देते, वरन ध्यान की क्रिया अपनी शक्ति से करा कर समझा देते हैं कि ऐसे होती है और उसमें ये स्थिति होती है। फिर पग-पग पर अपने आत्मबल से अभ्यासी का दिशा निर्देश करके उसे आध्यात्म के शिखर तक ले जाते हैं। यह मानसिक शक्ति और क्षमता उन्हें अपने निजी अभ्यासों तथा विशेष गुरु कृपा (सहायता) द्वारा प्राप्त हुई होती है, और यह क्षमता वे अपने योग्य शिष्यों को भी प्रदान कर देते हैं।

जहाँ आपको इस प्रकार का आध्यात्म मिले वहाँ समझिये कि आपको भगवान सर्वशक्तिमान तक पहुंचने की आशा है। जहाँ यह सब नहीं है वहाँ क्या है ? आप ही अनुमान लगा लें।

खोजने पर गुरु मिल जाते हैं यह भगवान का बनाया नियम है। हम समझे ही नहीं यह हमारी अपनी कमी है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि हमारी मूर्खता और लापरवाही है। मानव शरीर सुर दुर्लभ है, इसे पा कर भी इस माया-जाल से सदा-सदा के लिये छुटकारा पाने का विचार और फिर उपाय और प्रयत्न नहीं किया तो मानव जन्म निरर्थक गया। फिर हज़ारों वर्षों में घूम फिर कर मानव योनि मिलेगी और फिर यही स्थिति और समस्याएँ (Problems) रहेंगी। अतः अभी चेत जावें तो शुभ है। फिर की बात किसने जानी है ?

कागज के दाम छपाई आदि की दरें बढ़ जाने के कारण हमें पुस्तक का मूल्य बढ़ाने के लिए विवश होना पड़ा है। इसके अतिरिक्त छपाई भी पहले से अच्छी और मोटी की गई है। पाठक गण इसकी मूल्य वृद्धि के लिये हमें क्षमा करें।

गुरु भगवान हम सब का कल्याण करें।

15 अक्टूबर, 1996

डा० हरनारायण

जयपुर

यादें

संस्मरण - (भाग 1)
परम सन्त सद्गुरु श्रीमान महात्मा रामचन्द्र जी महाराज
(लाला जी महाराज)

परिचय

हमारे परम पूज्य श्रीमान लाला जी महाराज से हमारा सारा सत्संग परिवार भली-भाँति परिचित है । आपकी जीवनी आपके प्रमुख शिष्यों द्वारा प्रकाशित की जा चुकी है जो हमारे प्रत्येक सत्संगी को उपलब्ध है । हमारी जानकारी में आपकी जीवनी के लेखक महात्मा बाबू ब्रजमोहन लाल साहब (लखनऊ) महात्मा डॉक्टर श्री कृष्णलाल साहब (सिकन्दराबाद) थे, जिनमें से कोई भी महापुरुष इस समय इस पार्थिव शरीर में नहीं है । अतः यहाँ हम आपका थोड़ा सा परिचय देना ही पर्याप्त समझते हैं ।

आपका जन्म बसन्त पंचमी सम्वत् 1930 वि० तदनुसार, ता० 2 फरवरी 1873 के दिन स्थान भूमि ग्राम जिला मैनपुरी में हुआ था । आपके पिता श्रीमान चौधरी हरबख्श राय साहब वहाँ के एक बड़े जमींदार तथा रईस थे । आपकी माता का स्वर्गवास आपके बाल्य काल ही में हो गया । अतः आपका तथा आपके छोटे भ्राता महात्मा श्रीमान रघुवरदयाल साहब, दोनों के लालन-पालन का भार आपके पिता पर ही रहा । आपने दोनों का विवाह बड़ी धूमधाम से किया । परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ समय के पश्चात् आप के पिता जी का भी स्वर्गवास हो गया । अतः आपके तथा छोटे भ्राता दोनों परिवारों के लालन पालन का भार आप पर ही आ गया ।

समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज
(उर्फ लाला जी)

(फ़तेहगढ़, उ० प्र० निवासी)
(जन्म 1873 ई० - निर्वाण 1931 ई०)

कुछ पारिवारिक कारणों से अपनी पैत्रिक सम्पत्ति का कुछ भी भाग आपको नहीं मिला। अतः दोनों परिवारों के निर्वाह के लिए आरम्भ में कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा परन्तु जब आपने मिडिल की परीक्षा पास कर ली तो आपको फतेहगढ़ कलैक्टरी में 10 प्रति माह की नौकरी मिल गई और परिवार का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। पाठकों को यह समझने में कठिनाई न होगी कि उस समय रुपये की क्रय शक्ति क्या थी। गेहूँ 2 रू० मन (40 किलो) और घी 1 रू० का दो सेर (किलो) मिलता था।

इन्हीं दिनों सौभाग्यवश आपका सम्पर्क एक सूफी सन्त श्रीमान मौलवी फजल अहमद ख़ाँ साहब से हो गया। ये सन्त आध्यात्म के महारथी थे। इन्होंने आपके जीवन को एक मोड़ दिया और आपको आध्यात्म के बहुत ऊँचे पद पर पहुँचा दिया और परम सन्त की पदवी तथा अधिकार प्रदान करके आज्ञा दी, कि हमारा यह मिशन संसार में फैला कर संसार के भूले भटके जीवों का उद्धार करो, अपने आपको गुरु न समझ बल्कि सेवक समझकर स्वयं ही अपनी शक्ति तथा सामर्थ्य से इनको उंचा उठाओ।

आपने अपने जीवन में जो कार्य किया उससे हमारे सत्संगी भ्राता भली-भांति परिचित हैं। आपके शिष्यों ने देश के कोने-कोने में तथा दूर-दूर विदेशों में भी आपके मिशन को फैला दिया है। लाखों भूले भटके जीवनों को आध्यात्म के मार्ग में दीक्षित किया तथा भविष्य में भी भूले भटके जीवों के उद्धार का मार्ग प्रशस्त किया।

आपने 14 अगस्त 1931 को निर्वाण प्राप्त किया। आपकी समाधि फतेहगढ़ में कानपुर रोड पर नगर के बाहर नवेदिया में बनाई गई है। इस समाधि पर प्रतिवर्ष ईस्टर के दिनों (मार्च / अप्रैल) में आपका भण्डारा होता है।

ता० 4 फरवरी 1973 को आपकी जन्म शताब्दी मनाई गई जिसमें आपके विभिन्न शिष्यों के अनुयायी देश के प्रत्येक भाग से आए तथा आध्यात्म के मार्ग में शांति तथा प्रेम में सराबोर होकर लौटे।

दर्शन

सन् 1925 में मैं सबसे पहले श्रीमान चच्चा जी महाराज (परम सन्त महात्मा रघुवर दयाल जी महाराज, जो परम सन्त महात्मा रामचन्द्र जी महाराज के छोटे भाई थे) के दरबार में पहुँचा। वे उन दिनों कानपुर नगर में रहते थे। मैं भी उसी वर्ष कानपुर में ही (कॉलेज) शिक्षा के लिए गया था। मुझे आपकी सेवा में रहने का अवसर अधिक मिला। मेरे दीक्षा गुरु तो परम पूज्य श्रीमान लाला जी महाराज (महात्मा रामचन्द्र जी) ही हैं, जिन्होनें कृपा करके मार्च 1928 में मुझे अपनाया। परन्तु आपकी सेवा में मुझे रहने का अवसर कम मिला। इस थोड़े सम्पर्क में ही मुझे आपके बारे में जो जानकारी हुई और मेरे ऊपर आपकी दया और कृपा की जो वर्षा हुई, उसके संस्मरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सन्तमत और धर्म

श्रीमान लाला जी महाराज के गुरुदेव (हुजूर महाराज मौलवी फ़ज़ल अहमद ख़ाँ साहब) एक उच्च कोटि के सूफी सन्त थे। जब हुजूर महाराज ने पूर्ण सन्त सद्गुरु के रूप में आपकी सारी पूर्ति करके आपको प्रभु के नाम का प्रचार करने की आज्ञा प्रदान की तो हुजूर महाराज के पास आने वाले अन्य पुराने मुसलमान अभ्यासियों को अच्छा नहीं लगा। उन लोगों में जो मुखिया थे उन्होंने श्रीमान लालाजी महाराज से कहा कि आप इस्लाम कबूल कर लीजिए वरना यह विद्या आपके पास नहीं रहेगी। आपने हुजूर महाराज की सेवा में ये सब बात निवेदन कर दी और यह भी कहा कि "मैं तो सब तरह आपका हो चुका हूँ यदि धर्म परिवर्तन की आज्ञा हो तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ?"

हुजूर महाराज इस बात पर अप्रसन्न हो गए। उन्होंने उन मुसलमान मुखिया को बुलाकर आज्ञा दी कि "मैंने तुम्हें इस गुस्ताखी के लिए अपने सिलसिले (आत्मिक कुटुम्ब) से निकाल दिया। चले जाओ, और आइन्दा कभी मुझे मुँह न दिखाना।"

हुजूर महाराज का कहना था कि फ़क़ीरों की कोई जात नहीं होती। वे तो - खुदा की जात को ही अपनी जात मानते हैं। इसमें कोई हिन्दू मुसलमान का फर्क नहीं है। मगर क्योंकि यह गृहस्थों की विद्या है, इसलिए जिस जाति कुल में जन्म हुआ है उसकी मर्यादा निभानी पड़ेगी। हमारे गुरुदेव को यह विद्या देकर तथा सारा कार्यभार उन को सँभला कर हुजूर महाराज बहुत प्रसन्न हुए थे।

हमारे गुरुदेव के शिष्यों में ऐसे भी हो गए हैं जिन्होनें गुरुदेव के ऊपर के सद्गुरुओं के बारे में अपने शिष्यों को किसी प्रकार की जानकारी नहीं दी। यदि हम अपने पिता के बारे में सबके सामने प्रशंसा करें और अपने दादा (पिता के पिता) को गौण रखें अर्थात् वे अज्ञात रह जाएं, विशेषकर जब उनका हमारे इस अध्यात्म से इतना निकट का संबंध हो - तो इससे हमारे अध्यात्म मार्ग में उन महापुरुषों की कृपा की कमी होगी। इस कमी का फल क्या होगा, हमारे सत्संगी भ्राता भली भाँति समझते है।

बबूला

सन् 1926 में एक बार थोड़ी ही दूर रेल में श्रीमान के साथ यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। खिड़की के बाहर हम दोनों ही देख रखे थे कि हवा का एक बबूला जिसमें थोड़े से स्थान में ही हवा का चक्कर काटती हुई उपर उठती है, दिखलाई पड़ा और थोड़ी देर में शान्त हो गया। श्रीमान बतलाने लगे "देखो हरनारायण ! इसे बबूला कहते है। जब यह अधिक शक्तिशाली होता है तो बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ फेंकता है।" मुझे यह बात आज तक वैसी ही याद है।

सन् 1956 की बात है कि जयपुर में एक बार मैं साइकिल पर किसी कार्य से जा रहा था, टोप पर रेन कवर लगा था जिससे वर्षा से बचत हो सके। इतने में सामने से एक बबूला इतनी तेजी से आया कि मैं साइकिल से उतरूँ इतनी देर में तो धूल और मिट्टी में सराबोर हो गया और टोप उड़ कर कुछ दूर जा गिरा। जो कुछ मेरे साथ हुआ उससे भले ही थोड़ा कष्ट हुआ हो परन्तु गुरुदेव का वाक्य, वह नक्शा, वह सीन मेरे सामने था। इसी प्रकार जब भी बबूला देखता हूँ गुरुदेव के

साथ उस यात्रा की याद करके आनन्दित हो जाता हूँ।

निषेध

एक बार आपने बताया कि 'उड़द की दाल, मूली, करेला और दही' इन चार पदार्थों में से किसी भी दो को साथ-साथ नहीं खाना चाहिए। रासायनिक दृष्टिकोण से इससे क्या दोष उत्पन्न हो जाते हैं, यह न तो हमें मालूम है और न ही जानने का कभी प्रयत्न किया। इसमें से जब कभी भी दो अथवा अधिक वस्तुएँ हमारे सामने आती है तो हमें गुरुदेव की निषेधाज्ञा याद आ जाती है। हम उसके अनुसार किसी भी एक वस्तु को भोजन में ले लेते है और दूसरी वस्तु को खाने के पहले ही निकाल कर अलग रख देते हैं। इसी प्रकार उनकी ओर से खरबूजा और दूध, तरबूज ओर चावल, साथ-साथ खाने का निषेध है। हम तो इसका पालन करते हैं और इस बहाने उनकी याद को अपने हृदय में जाग्रत कर लेते हैं। हमने कभी यह जानने का प्रयत्न तो क्या इच्छा भी नहीं की कि ऐसी वस्तु साथ-साथ खाने से शरीर को हानि होती है या नहीं। हमें तो मात्र उनका कहना मानना है और इसी प्रकार उनकी याद कर लेना है।

गले का जादू

सन् 1925 की बात होगी कि कानपुर में मामाजी के मकान पर हमें एक बार संध्या समय श्रीमान जी के पास पूजा ध्यान के लिए बैठने का सौभाग्य मिला। आपने "रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम" यह पद अपने श्रीमुख से मधुरतम स्वर से सुनाया। फिर हर शब्द का अर्थ समझाया। पूजा ध्यान आदि तो जो होता था वह हुआ। आज 70 वर्ष से अधिक हुए फिर भी वे शब्द हमारे कानों में उन्हीं मधुरतम स्वरों में गूँजते हैं। जहां और जब भी इस पद को किसी के मुँह से अथवा रिकार्ड आदि में सुनते हैं वह याद ऐसी जम जाती है कि बड़ी देर तक हम गुरुदेव के सम्पर्क का आनन्द लेते रहते हैं। और भी भजन जो कभी आपके श्रीमुख से सुने थे, वैसे ही याद हैं तथा अब तक इन कानों में गूँजते रहते हैं।

कुम्भ का मेला

सन् 1929 में इलाहाबाद में कुम्भ का मेला हुआ। उसके प्रबन्ध कर्ताओं में हमारे लालाजी महाराज के कई शिष्य जो राज्य के उच्च कर्मचारी थे, लगाए गए। इन सब ने मिलकर वहां सत्संग का आयोजन किया जिसमें श्रीमान लालाजी महाराज, श्रीमान चच्चाजी महाराज (परम सन्त महात्मा रघुवर दयाल जी), परम सन्त महात्मा डा॰ कृष्ण स्वरूप जी तथा इनके परिवारों के सब सदस्य, भाई साहब दिलारामजी, गुसाई गंगाभारती जी राजगढ़ वाले, दादा करनसिंह जी, पं॰ मानसिंह जी इत्यादि बहुत से सत्संगी एकत्रित हुए। पूजा ध्यान का आनन्द तो ऐसे अवसरों पर 'भण्डारे" के समान होता ही है जो खूब था। विशेष बात यह थी कि हमारे सत्संग के कुछ कट्टर पंथी ही गंगा जमुना या त्रिवेणी के स्नान को भले ही जाते हों अन्यथा सभी अपने शामियानों में ही नल पर नहा लेते, और पूजा ध्यान अथवा चर्चा में बैठ जाते। आध्यात्मिक गंगा, जमुना रूपी त्रिवेणी के स्नान के सामने, प्रत्यक्ष गंगा, जमुना त्रिवेणी को, जो सुलभ भी थी, कोई महत्व न देता। श्रीमान लाला जी महाराज, श्रीमान चच्चा जी महाराज जैसे रवि प्रताप वाले संतों के सम्मुख होने पर उनके सत्संग का आनन्द लेने में, सभी बाह्य आडम्बर भूल बिसर जाते थे।

कई बार हमारा इलाहाबाद जाना हुआ, त्रिवेणी पर भी गए। एक तो ऐसे स्थान पर जाते ही हमें पुरानी यादें पूर्ण रूप से सामने आ जाती हैं, दूसरे, स्थान का महत्व जैसा उस समय समझा था वह भी सामने आ जाता है। प्रत्यक्ष जल में स्नान के स्थान पर आज भी हमारा तो वहां आध्यात्मिक स्नान हो जाता है।

समय का मूल्य

हमारे एक भाई स्वर्गीय श्री वीरेन्द्र, गाजियाबाद निवासी उत्तर प्रदेश की प्रांतीय प्रशासनिक सेवा के अवकाश प्राप्त उच्चाधिकारी थे और श्रीमान लालाजी महाराज के शिष्य थे। एक दिन आपने एक कलेक्टर मित्र के साथ हुए वार्तालाप का हाल बताया। ये सज्जन कलेक्टर मित्र जब फतेहगढ़ में डिप्टी कलेक्टर थे उस समय श्रीमान लालाजी महाराज उनके कार्यालय में रिकार्ड कीपर थे। एक बार इन

डिप्टी कलेक्टर साहब ने एक मिसल (फाइल) लेकर आपको अपने निवास स्थान पर बुलाया। वहाँ उस समय ये साहब कुछ और कार्य कर रहे थे। अतः आपको दो घण्टे प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब कलेक्टर साहब मिसल देखकर वापिस कर रहे थे तो कहने लगे, "आपको बहुत देर प्रतीक्षा करनी पड़ी और आपका बहुत सा समय थोड़े से काम के लिए नष्ट हुआ।" आपने उत्तर में केवल इतना ही कहा कि "मेरा कोई समय नष्ट नहीं होता।"

श्रीमान लालाजी महाराज के स्वर्गवास के बहुत दिन बाद जब वे कलेक्टर मित्र वीरेन्द्र जी से मिले तो संयोगवश श्रीमान लालाजी महाराज के विषय में चर्चा हो गई। कलेक्टर साहब ने यह घटना उन्हें सुनाई और कहने लगे कि उनके उस समय की बात कि "मेरा कोई समय नष्ट नहीं होता" का मतलब अब समझ में आया है कि वे कितने महान थे। उस समय हमने इन वचनों पर विशेष ध्यान ही नहीं दिया।

जो समय प्रभु की याद से खाली होता है वही समय नष्ट हुआ समझिये। हमारे गुरुदेव तो हर समय अपने गुरुदेव में लीन रहते थे। अतः उनका हर क्षण प्रभु की याद में व्यतीत होता था। जब हमें वह वार्ता याद आती है तो उनके प्रेम में गद्गद हो जाते हैं और उन्हीं से प्रार्थना करते हैं कि हमें अपनी जैसी याद प्रदान करें कि किसी समय भी हम उन्हें न भूलें और हमारा भी कोई समय नष्ट न हो।

शाह साहब

फतेहगढ़ में एक शाह साहब किसी अच्छे गुरु के शिष्य थे और उन्हें सल्ब करने का बड़ा अभ्यास था। सल्ब का मतलब हे कि दूसरे की अच्छाई बुराई को खींच लेना या निकाल देना। यह कार्य केवल ध्यान ख्याल) से होता है और हमारे सभी पुराने अभ्यासी इसको जानते हैं। तो वे शाह साहब अभ्यास करने वालों की आध्यात्म की कमाई खींचकर अपनी बना लिया करते थे। हमारे परम पूज्य श्रीमान लालाजी महाराज को देख कर उन्हें बड़ा लालच आता था। सोचा करते कि इस अजीज को किसी दिन सल्ब करुंगा। संयोगवश एक दिन यह अवसर भी आ गया।

लालाजी महाराज के गुरुदेव (हुजूर महाराज) कुछ बीमार थे और उन

दिनों कानपुर इलाज के लिए पधारे हुए थे । आप फतेहगढ़ से हर शनिवार को उनकी सेवा में रेल से चले जाते और सोमवार को कचहरी के समय तक आ जाते। एक शनिवार को फतेहगढ़ स्टेशन की ओर थोड़ी तेज गति से जा रहे थे, रेल का समय हो रहा था कि सामने से शाह साहब आ गए और इन्हे बड़े प्यार से लिपटा कर बोले, "बहुत दिनों से तुम्हारी तलाश में था, बरखुरदार ! आज मिल पाये हो।" अपना काम किया और चलते बने।

हमारे श्रीमान लालाजी महाराज को, जो चौबीसों घण्टे हर क्षण अपने गुरुदेव में लीन रहते थे, कुछ भी मालूम नहीं पड़ा कि क्या हुआ। असल में हुआ यह कि शाह साहब खुद ही श्रीमान के द्वारा, सल्ब हो गये। जिनकी दृढ़ धारणा हो कि चौबीसों घण्टे अपने गुरु में लीन रहें, किसी बड़ी से बड़ी शक्ति की भी सामर्थ्य उन्हें हानि पहुँचाने की नहीं है। यही ईश्वरीय शक्ति है जो सर्वोपरि है।

उधर लालाजी तो कानपुर पहुंचकर गुरुदेव की सेवा में लगे । इधर फतेहगढ़ में घर पहुँचते पहुँचते तो शाह साहब के हृदय में इतनी जोर का दर्द हुआ कि किसी प्रकार चैन न पड़ा। हकीम डाक्टर भी कुछ निदान न कर सके। रात भर तड़पते हो गया, तब कहीं शाह साहब को याद आया कि उन्होंने बरखुरदार की निस्बत सल्ब की है तभी से यह हाल है। आदमी दौड़ाए पता निशान मालूम किया और कानपुर हुजूर महाराज के पास दौड़े और जा कर चरणों में लोट गए। कहा कि आपके बरखुरदार ने मेरी निस्बत (आंतरिक सम्बन्ध) सल्ब कर ली है उसे वापिस दिला दीजिये। हुजूर महाराज ने कहा कि मेरा बरखुरदार कभी ऐसी गुस्ताखी नहीं कर सकता। फिर लालाजी साहब को बुलाकर इस विषय में पूछा तो पता चला कि वह तो इस विषय में अनजान थे। तब हुजूर महाराज ने शाह साहब को डांटा कि "आप खुदा के नाम के बहाने ऐसी हरकतें करते हैं ? आपको शर्म आनी चाहिए। आपको मैंने सल्ब किया है। आपकी अमानत मेरे तकिए के नीचे पड़ी है। आप आज से तौबा कीजिये कि आइन्दा किसी के साथ कभी ऐसी हरकत नहीं करेंगे। शाह साहब के तौबा करने पर दया के समुद्र हुजूर महाराज ने उनकी धरोहर लौटा दी और वे प्रसन्नचित घर को लौट गए।

गुरु की जिस पर कृपा हो उसे संसार का कोई व्यक्ति तो क्या, प्रकृति माता भी कोई हानि नहीं पहुँचा सकती। गुरुदेव प्रभु के प्रतीक ही नहीं स्वयं ईश्वर के रूप हैं। उनकी दया-कृपा प्रभु की दया कृपा है उसमें यदि संदेह हो तो उसे निकाल फेंकिये। गुरुदेव हम सब को ऐसी सुबुद्धि देवें और उनकी दया-कृपा की हम सब पर वर्षा होती रहे।

कोंच का भण्डारा

उत्तर प्रदेश के जालौन प्रान्त में एक छोटा नगर कोंच है। सन 1926 में वहां आस पास के बहुत से सत्संगियों ने भण्डारे के रूप में एकत्रित होने के लिए श्रीमान लाला जी महाराज की अनुमति ले ली। श्रीमान लाला जी महाराज, श्रीमान चच्चा जी महाराज तथा परिवार के और आत्मिक कुटुम्ब के सभी सदस्य वहां पहुँचे। हम तो श्रीमान चच्चा जी महाराज के साथ रहते थे, उनके साथ चले गए। दो दिन तक ऐसा आनन्द रहा कि हमें पहले कभी ऐसा अनुभव ही नहीं हुआ था, उस समय हम नवागन्तुक तो थे ही। श्रीमान लालाजी महाराज के प्रिय शिष्यों में भाई साहब बाबू प्रभु दयाल जी (पेशकार, इन्कम टैक्स) भी हमारे साथ सपरिवार गये थे। उनका पुत्र गुरुदयाल 5-6 वर्ष का होगा। रात्रि के आरम्भ में ही पूजा के कमरे में आकर लेट गया और सो गया। उसे कहीं और स्थान मिला नहीं, न किसी ने उसे आकर सोते देखा। उस कमरे में परम संत भाई साहब बाबू बृजमोहन लाल जी पूजा करा रहे थे जो बहुत देर तक चली। उस रात्रि को ध्यान की अवस्था इतनी घनी थी कि पुराने-पुराने अभ्यासी भी पूरे होश में नहीं थे। बच्चों का हृदय शुद्ध होता है, गुरुदयाल ने यह सब ग्रहण किया और क्योंकि यह सब उसकी सहन शक्ति से कहीं अधिक था, वह ऐसा बेसुध हुआ कि सब प्रयास करने पर भी होश में न आया। श्रीमान लालाजी महाराज ने उसे देखा और उसे वापिस सल्ब तो कर दिया परन्तु आज्ञा दी कि इसे सोने दो प्रातः तक ठीक हो जायेगा।

हमें यह बात तभी से याद है। जब कभी कोई सज्जन अपने साथ छोटे बच्चों को सत्संग में ध्यान के समय में लाते हैं तो हमें यह घटना याद आ जाती है। हम तो यथाशक्ति उन बच्चों को ध्यान के मण्डल से बाहर कर देते हैं। यदि न हो

सका तो थोड़ा सा ध्यान लगा कर ही बस कर देते हैं। बच्चों को प्रभावित होने का भय रहता है। इनका हृदय शुद्ध होता है आत्मा की सुरत-धार को ये सरलता से ग्रहण कर लेते है। सहन शक्ति न होने के कारण उन्हें इससे हानि हो सकती है।

अरवी का साग

बात तो बहुत छोटी है परन्तु हमें तो यह भी अपने गुरुदेव की याद दिला देती है। इसलिए आपके सम्मुख रखते हैं। हमारे श्रीमान लालाजी महाराज को अरवी के साग की विशेष रुचि थी। हम जब कभी भी जहां कहीं भी इस साग को अपनी थाली या प्लेट में देखते हैं, हमें अपने गुरुदेव की याद आ जाती है। आप भी चाहें तो अपने गुरुदेव की पसंद की एक दो ऐसी ही वस्तुएँ छांट कर याद कर लीजिए।

ऊँचा आसन

1929 के भण्डारे में बहुत से सत्संगी आये हुए थे। प्रातः काल जब गुरुदेव पूजा के लिए बाहर पधारे तो हम सब जो बैठे उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, उठ कर खड़े हुये। एक पंडितजी तुरंत आगे बढ़े और जिस स्थान पर गुरुदेव बहुधा बैठा करते थे उस स्थान को अपने अँगोछे से झाड़ा और वह अँगोछा बिछा दिया। आप खड़े खड़े यह देखते रहे और फिर पंडित जी से पूछा "पंडित जी यह आपने क्या किया ?" पंडित जी ने उस अँगोछे के आसन की ओर संकेत करते हुए कहा, "आपके विराजने के लिए स्थान साफ करके आसन बिछाया है।" आपने बड़े सहज भाव से कहा कि "हम किसी विशिष्ट आसन पर नहीं बैठते। जहाँ सब भाई बैठते हैं वहीं हम बैठते हैं।" और यह कह कर आप वहाँ से हट कर दूसरे स्थान पर बैठ गये।

हमारे गुरुदेव की भावना तो यह थी कि वे किसी विशिष्ट अथवा ऊँचे स्थान पर नहीं बैठते थे। अब जब भी हम अपने आध्यात्म के शिक्षकों अथवा अन्य स्थानों पर भी कुछ विशेष व्यक्तियों को विशेष ऊँचा आसन लगाकर बैठा देखते हैं तो हमें हमारे सामने घटी गुरुदेव की यह घटना याद आ जाती है। मनुष्य स्वभाव के

अनुसार हमें यह बात खटक भी जाती है कि हमारे उन्हीं गुरुदेव के शिष्य अथवा उनके भी शिष्य अपने को सेवक न समझ कर सर्व साधारण से उंचा होने की भावना लेकर क्यों बैठ जाते हैं ?

बाजीगरी

गुरुदेव के एक शिष्य आपकी सेवा में फतेहगढ़ पहुँचे तो वे शिष्य अधिक प्रसन्न मुद्रा में थे। संध्या समय जब गुरुदेव के पास पूजा के लिए बैठे तो कहने लगे कि आपकी कृपा से अब मुझ में यह शक्ति आ गई है कि बन्द मकान में से अपने आप बाहर आ जाता हूँ। गुरुदेव ने उनकी इस बात पर ध्यान नहीं दिया और दूसरी बात करने लगे। उन सज्जन से रहा नहीं गया और कुछ देर बाद फिर उन्होंने गुरुदेव से वही निवेदन किया। गुरुदेव उनका मतलब समझ गए और बोले, हाँ हाँ भाई मैं भूल ही गया और एक दूसरे सज्जन (पूज्य भाई साहब परम संत श्रीमान मदन मोहन लाल जी) से कहा भाई जरा इन्हें इस कमरे में बन्द कर देना। बन्द मकान या सन्दूक के बाहर निकल आना एक शक्ति है। आध्यात्म का मार्ग इतना ऊँचा है कि उसमें चलने वालों की राह में यह और ऐसी अनेक शक्तियाँ आया करती हैं। गुरुदेव इनकी ओर से हमारी दृष्टि हटा देते हैं जिससे हमारी राह में यह बाधक न हो जावें। इन सज्जन के साथ भी ऐसा ही हुआ। इस स्थान पर रुके हुए थे और इसे ऊंची सिद्धि समझ कर बड़े प्रसन्न थे। गुरुदेव के सम्मुख आते ही उन्हें इस आध्यात्मिक स्थान से थोड़ा उपर उठा दिया गया।

वे सज्जन अपनी सारी हेकड़ी भूल गए और जब कोई वश न चला तो बैठ कर रोने लगे। इधर गुरुदेव और लोगों से बातें कर रहे थे। उनके कानों में जब उनकी सिसकियों की आवाज पड़ी तो तुरन्त बोले, "भाई इनको खोल दो।" दरवाजा खोलने पर वे सज्जन रोते हुए आए और गुरुदेव के पैरों में गिरकर जोर जोर से रोने लगे। "मेरी वह शक्ति कहीं चली गई ?" गुरुदेव ने उनसे पूछा कि "आप मेरे पास ईश्वर के नाम के लिए आते हैं या बाजीगरी सीखने ? बाजीगरी सीखना हो तो दुनियाँ में बहुत लोग हैं जो यह सब आपको सिखा देंगे। मेरे पास तो भाई ईश्वर का नाम है। तुम्हें चाहिए तो मेरे पारा आओ, वरना तुम्हारी मर्जी !"

सेवा भाव

सन् 1930 की बात है। इन दिनों मेरे मामा जी श्री तेजराय (1980 के आरम्भ में इनका स्वर्गवास हो गया था) कुछ समय के लिए कानपुर में रहे थे। हाई स्कूल की परीक्षा पास करके किसी राज्य सेवा (सरकारी नौकरी) की चिन्ता में थे। उनका समय अधिकतर श्रीमान चच्चा जी महाराज की सेवा में व्यतीत होता था। किसी नौकरी के साक्षात्कार (Interview) के लिए इन्हें फतेहगढ़ जाना था। श्रीमान लाला जी महाराज उस समय कानपुर पधारे हुए थे। श्रीमान चच्चा जी महाराज ने मामा जी को यह परामर्श दिया कि तुम लाला जी महाराज के साथ ही फतेहगढ़ चले जाना। अतः शाम को गाड़ी से चलकर मामा जी भी श्रीमान लाला जी महाराज के साथ फतेहगढ़ पहुँचे। रात के दस बज चुके थे। उस समय श्रीमान लाला जी महाराज के पास न तो लड़कों में से कोई था न कोई नौकर था। वे स्वयं ही अन्दर से चारपाई लाए और बाहर के चौक में बिछा कर मामा जी से बोले "थोड़ा आराम कर लीजिए।" फिर थोड़ी देर बाद बाल्टी में पानी और लोटा ले आए "हाथ पैर मुँह धो लीजिए।" मामाजी मन में संकोच वश थोड़ा थोड़ा हो रहे थे कि इतने बड़े बुजुर्ग मेरे लिए यह सारा कष्ट उठा रहे हैं-परन्तु क्या करते ? जैसा श्रीमान लाला जी महाराज कहते गये, आप करते गये। थोड़ी देर बाद एक थाली में गरमा-गरम पूड़ियाँ ओर कटोरे में आलू का साग ले आये- "खाना खा लीजिये।" मामा जी बतलाते थे कि हम उनके इस सेवा भाव को देखकर शर्म से पानी-पानी हुए जा रहे थे, परन्तु वे हमें खाना खिला कर ही अन्दर गये तब खाना खाया।

हमारे श्रीमान लालाजी महाराज का यह आदर्श था कि जहां सेवा का अवसर हो वहां अग्रसर रहना तथा स्वयं सेवा लेने से सदा बचते रहना। भंडारा आदि के समय कुछ अधिक संख्या में भाई लोग आपके घर आते तो आप प्रातः अंधेरे ही उठ कर उनके स्नान आदि के लिए कुऐं से जल कर भर कर रख देते जिससे उन्हें असुविधा न हो तथा उनका समय पानी निकालने में व्यय न हो।

सन् 1928 में श्रीमान लाला जी महाराज की कन्या का विवाह हुआ। एटा से बारात गई थी। मैं भी विवाहोत्सव में सम्मिलित होने पहुंच गया। मेरे साथ पढ़े

हुए एक जौहरी साहब भी बारात में आए थे। उन्होंने मुझे बताया कि यहाँ की मेहमानदारी और सेवा देख कर हमें बड़ी शर्म मालूम होती है। बड़ी बड़ी दाढ़ी वाले बुजुर्ग हम पर पंखा झूलते है और हर प्रकार की सेवा के लिए तैयार रहते हैं। हमें पानी का गिलास भी उठाने नहीं देते।

जब अपने घर वालों तथा अन्य भाइयों के प्रति पूर्णरूप से सेवा का भाव रहता था तो उनके पास अभ्यास सीखने आने वालों के प्रति हमारे गुरुदेव का सेवा भाव होना स्वाभाविक ही था। क्या हम आजकल के अभ्यासियों से भी जिन्हें गुरु पदवी मिल चुकी है, श्रीमान लाला जी महाराज के इन आदर्शों के पालन की आशा रखें ?

कश्फ़

बहुत सी वर्तमान तथा भविष्य की बातें अपने आप संतों के सामने आती रहती हैं परन्तु वे इस ओर ध्यान नहीं देते। इसी प्रकार बहुत से स्थान विशेषकर पुराने संतों के रहने अथवा उनके नाम पर बने स्थान, उनकी दिव्य दृष्टि में आते रहते हैं।

हमारे परम पूज्य श्रीमान छोटे चच्चा जी महाराज, परम संत महात्मा डाक्टर श्री कृष्ण स्वरूप साहब ने हमें बतलाया कि एक बार वे अजमेर नगर में श्रीमान लाला जी महाराज के साथ नगर के एक भाग से होकर जा रहे थे कि वहां एक संत की स्मृति में बनी एक बिल्डिंग के सामने से निकलना हुआ तो श्रीमान डाक्टर साहब ने आपको बतलाया कि यह 'ढाई दिन का झोंपड़ा' है और अमुक संत की याद में बनाया गया था। श्रीमान लाला जी महाराज ने पूछा कि इसमें ऐसा-ऐसा बना हुआ है ? श्रीमान डाक्टर साहब ने स्वीकार किया कि ऐसा ही है। श्रीमान लाला जी महाराज ने कहा "जगह देखी हुई है।"

हमारे श्रीमान डाक्टर साहब ने हमें बतलाया कि श्रीमान लाला जी महाराज जब भी अजमेर गये, वे उनके साथ रहे और कभी उस बिल्डिंग में वे नहीं गए, परन्तु उनकी देखी हुई न होती तो अन्दर का सारा हाल कैसे बतला देते ?

हमारे सत्संग में गुरु लोग जो शिक्षा का कार्य करते हैं तथा जिन्हें गुरु कृपा मिली होती है, उन्हें आने वालों की आत्मिक अवस्था तथा मन की बातें प्रायः स्वतः ही मालूम हो जाती है तथा संशय अथवा मार्ग में कोई रूकावट आ गई हो तो उसे निकाल भी देते हैं। परन्तु ऐसी बातें वे जिह्वा द्वारा कभी नहीं कहते। हां, यदि आप ही स्वयं उन्हें बतलावें अथवा पूछें तो उत्तर अवश्य दे देते हैं। इसी को हमारे संत 'कश्फ़' कहते है।

हमारे गुरुदेव बतलाया करते थे कि हमारे ऊपर के बुजुर्गों का कश्फ़ असाधारण था। परन्तु संत परदा रखते हैं। क्योंकि ईश्वर सबके मन की बात जानते हुए भी दूसरों पर उसे प्रकट नहीं होने देता। अतः उसके बंदे को यह अधिकार कहां है ?

जादुई पुड़ियाँ

हमारे भाई साहब इटावा निवासी श्रीमान प्रेम बिहारी लाल जी श्रीमान लाला जी महाराज के बहुत निकट रहे है। इन्होंने अपने जीवन की दो घटनाएं हमें बतलाई जिनका उल्लेख हम यहां कर रहे हैं।

घटना सन 1930 से पहले की है। इन भाई साहब के बड़े भ्राता श्रीमान अवध बिहारी लाल जी, जो श्रीमान लाला जी महाराज के शिष्य थे, एक बार एटा में इतने बीमार हो गए कि उनके जीवन की आशा भी क्षीण हो गई। डाक्टरों के समझ में नहीं आ रहा था कि क्या रोग है और इसका क्या निदान करें। घर के सब प्रियजनों को इनके इस कठिन रोग की सूचना भी दे दी गई थी। इनकी माता विशेष रूप से दुखी थीं और अधिकतर रोती ही रहती थी। एक संध्या के समय में, जबकि हालत बहुत चिन्ताजनक थी, किसी ने द्वार खटखटाया। माताजी स्वयं ही खोलने गई और देखा कि डाक्टर सोहन लाल, जो कि श्रीमान भाई साहब का इलाज कर रहे थे, आये हैं। उन्होंने दो पुड़ियाँ माताजी को दी और कहा कि एक तो अभी खिला दो। और दूसरी आवश्यकता हो तो कल प्रातः खिला देना। माताजी के आग्रह करने पर भी कि इन्हें देख तो लें, डाक्टर साहब ने इन्कार कर दिया और

चले गये।

डाक्टर साहब के आदेशानुसार एक पुड़िया तो उसी समय दे दी गई और दूसरी सिराहने तकिये के नीचे रख दी गई। इस पुड़िया ने जादू का सा काम किया और रात भर में उनकी तबियत, जो कि बहुत खराब थी, लगभग ठीक हो गई। रात को बहुत उँचा बुखार था। प्रातः कुछ न था। डाक्टर सोहन लाल प्रातः देखने को आये तो उन्होंने रोगी को स्वस्थ पाया। उन्हें माताजी ने बतलाया कि शाम को दी गई आपकी पुड़ियों में से उस समय एक ही दी गई जिसने इन्हें इतना स्वस्थ कर दिया। डाक्टर साहब ने आश्चर्यचकित होकर कहा कि "मैं स्वयं कल दोपहर बाद से ही बुखार में पड़ा था मैं कैसे पुड़ियाँ देने आता ?"

अब यह सारा मामला ही एक रहस्य बन गया। विशेष रूप से जब सिराहने रखी गई पुड़िया ढूंढने पर भी नहीं मिली।

दिन के दस बजे के लगभग डाक से श्रीमान लालाजी महाराज का पत्र मिला जिसमें आपने श्रीमान भाईसाहब को लिखा था कि "रूहानियत (आध्यात्म मार्ग) में तकलीफ़ें आती ही रहती हैं। इनसे घबराना नहीं चाहिए। मुझे आशा है कि जिस समय यह पत्र मिलेगा, तुम बिल्कुल स्वस्थ होंगे।"

अब यह रहस्य समझ में आया कि संध्या को वे दो पुड़िया देने वाले डाक्टर सोहन लाल न थे वरन् उन डाक्टर के भेष में श्रीमान लाला जी महाराज स्वयं ही आये थे।

इस घटना की जानकारी के बाद जब कभी भी हम किसी असाध्य रोगी को देखते हैं तो हमें श्रीमान लाला जी महाराज की इन दो पुड़ियों की याद आ जाती है।

सुगन्धित तेल

दूसरी घटना स्वयं भाईसाहब श्रीमान प्रेम बिहारी लाल जी की है। सन् 1928 में जब ये एटा स्कूल के दसवीं क्लास में पढ़ते थे "उन दिनों श्रीमान लाला

जी महाराज का परम संत डा॰ चतुर्भुज सहाय जी के घर पधारना हुआ। ये भाई साहब शाम को अधिक सुगंधि वाला तेल बालों में लगाकर श्रीमान लाला जी महाराज के दर्शन को गये, चरण स्पर्श करने पर जैसा कि ये चाहते थे, लालाजी महाराज ने इन्हें अपने पास बिठला लिया। कुछ समय बाद जब लोग अपने नित्य कर्म आदि के लिये उठ गए तब भी श्रीमान लालाजी महाराज ने इन्हें अपने पास ही बिठाये रखा और जब ये दो ही कमरे में रह गए तब फरमाया कि "तेल जो तुमने लगाया है अच्छा खुशबूदार है मगर इतनी तेज खुशबू का तेल इस्तेमाल नहीं करना चाहिये।"

जब तक श्रीमान लाला जी महाराज वहां ठहरे, इन भाई साहब ने वह तेल नहीं लगाया परन्तु इनके जाने के बाद फिर उसे लगाना आरम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों एक सत्संगी भाई इनके यहां से फतेहगढ़ गये और इन भाईसाहब की शिक्षा आदि की चर्चा हुई तो श्रीमान लाला जी महाराज ने उनके द्वारा उनके बड़े भ्राता को कहलाया कि "प्रेम बिहारी ने हमारा कहना नहीं माना और अब भी खुशबूदार तेल इस्तेमाल करता है इसका नतीजा अच्छा नहीं होगा।" इन बड़े भाईसाहब ने भी इनको समझाया परन्तु इन्होंने नहीं माना और वही तेल सिर में डालते रहे।

हाई स्कूल की परीक्षा आ गई। इन भाई साहब ने प्रश्न-पत्रों के उत्तर अच्छे लिखे परन्तु परीक्षा फल में उत्तीर्ण घोषित नहीं किये गये।

परीक्षा फल घोषित होने के तुरन्त बाद परम संत श्रीमान डाक्टर चतुर्भुज सहाय जी तथा इनके बड़े भ्राता श्री अवध बिहारी लाल जी फतेहगढ़ पधारे। इन्हें देखते ही श्रीमान लालाजी महाराज ने फरमाया कि एटा का रिजल्ट अच्छा निकाला और इनके भाईसाहब प्रेम बिहारी लाल जी के फेल होने की बात भी कह दी। श्रीमान डाक्टर साहब के सिफारिश करने पर श्रीमान लाला जी महाराज ने फरमाया कि मेरे हुक्म की तामील नहीं की, लिहाज़ा सजा मिलनी ही चाहिए थी।"

उल्लेखनीय है कि श्रीमान लाला जी महाराज को न तो भाई साहब का रोल नम्बर पता था और न इन दोनों आगन्तुकों ने ही इन्हें अनुर्त्तीण होने की बाबत बतलाया फिर भी इनका रिजल्ट उन्हें पता चल गया।

इस घटना के बाद भाई साहब ने अधिक सुगंधि वाला तेल लगाना छोड़ दिया। आगामी वर्ष में ये सेकिण्ड डिविजन से पास हो गए।

हमें इस घटना से यह शिक्षा मिली कि जब भी किसी को तेज सुगंधि वाला तेल लगाया पाते हैं, हमें श्रीमान लालाजी महाराज की यह बात याद आ जाती है कि "तेज खुशबूदार तेल इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।"

भाईसाहब महात्मा श्रीमान बृजमोहन लाल जी को गुरु पदवी

दिसम्बर सन् 1928 में भोगाँव में श्रीमान परम पूज्य मौलवी साहब हजरत जनाब क़िब्ला अब्दुल ग़नी ख़ाँ के मकान पर सदा की भांति उर्स का भण्डारा था। इस भंडारे में एक विशेष बात यह हुई कि श्रीमान पूज्य मौलवी साहब ने भाई साहब बाबू बृजमोहन लाल जी को पूर्ण संत सतगुरु की पदवी प्रदान की। हमारे परम पूज्य श्रीमान लाला जी महाराज तथा श्रीमान चच्चा जी महाराज के वंश में चार पुत्र थे। इन चारों ही को आपने श्रीमान मौलवी साहब के पास ही दीक्षा के लिए प्रस्तुत किया। वे स्वयं भी उन्हें दीक्षा दे सकते थे परन्तु उनका ये एक मात्र आदर भाव (अदब) था। वे इनको अपने गुरुदेव के स्थान पर मानते और उसी भांति आदर देते थे। इन चारों पुत्रों में भाई साहब बृजमोहन लाल जी सबसे बड़े थे, और श्रीमान लाला जी महाराज के पास, छोटे थे तभी से, अपनी स्कूल आदि की शिक्षा के लिए फतेहगढ़ में उनकी सेवा में रहते थे।

इसके पश्चात् श्रीमान लालाजी महाराज ने इन्हें (भाईसाहब को) अपने गुरुदेव के दिए हुए कुर्त्ता टोपी आदि वस्त्र भी अपने हाथों से पहिनाए। इसका अभिप्राय यह था कि इन भाईसाहब को ही श्रीमान लाला जी महाराज ने अपना उत्तराधिकारी बनाया। श्रीमान लालाजी महाराज ने जो अपना अधूरा वसीयतनामा छोड़ा है उसमें यह प्रत्यक्ष रूप से अपने सुपुत्र महात्मा श्री जगमोहन नारायण जी को यह आदेश भी दिया कि इनको (भाईसाहब बृजमोहन लाल जी को) यथोचित आदर देते रहें तथा जितनी हो सके उतनी सेवा सदा करते रहें। इन्हीं के द्वारा इन्हें

आत्मिक लाभ होगा।

श्रीमान लाला जी महाराज ने अपने गुरुदेव से यह भी वरदान पाया बतलाया गया है कि उनके वंश में संत परम्परा (फकीरी) सात पीढ़ी तक चले। हमारे सामने इस समय उनकी तीसरी पीढ़ी तक संत मत के अच्छे साधक दिखलाई पड़ रहे हैं आगे की पीढ़ी का भी यही हाल होगा ऐसा विश्वास है।

श्रीमान लाला जी महाराज तथा श्रीमान चच्चा जी महाराज की सेवा से उनके गुरुदेव इतने प्रसन्न थे कि इन दोनों को अपने पास की सारी विद्या तथा जो कुछ भी उनकी शक्ति में था सभी कुछ दे देना चाहते थे। और उन्होंने यह सब दिया भी यह अक्षरशः सत्य है। दुनिया भी दी और दीन भी दिया।

हमारे गुरुदेव श्रीमान लाला जी महाराज अपने गुरुदेव का कितना आदर करते थे यह सब तो गुरुदेव की जीवनी तथा उनके गुरुदेव के पत्रादि, जो फतेहगढ़ तथा श्रीमान के अन्य शिष्यों द्वारा प्रकाशित किये गये हैं, उनसे अनुमान लगाया जा सकता है।

हमारे लेखों में भी एक प्रसंग - "आदर का एक और दृष्टान्त," नाम से भाग 5 में लिखा है जो इसकी केवल पुष्टि ही नहीं करता वरन् हम सबके लिए स्वयं श्रीमान लालाजी महाराज का उदाहरण प्रस्तुत करता है कि गुरुदेव के परिवार के सदस्यों के प्रति हमें क्या और कैसा व्यवहार करना चाहिए। अतः यह देखकर दुख होता है कि श्रीमान लालाजी महाराज के शिष्यों ने अपने प्रचार माध्यमों में व्यस्तता तो खूब दिखाई परन्तु उनके परिवार के सदस्यों के प्रति उनका उतना आदरभाव न रहकर कुछ उदासीनता ही रही। दुख की बात है कि इन शिष्यों के अनुयायी फतेहगढ़ में, जो हमारी इस आध्यात्मिक परम्परा का उद्गम स्थान है, श्रीमान लालाजी महाराज की समाधि तथा उनके परिवार के प्रति उदासीन रहते है।

श्रीमान चच्चाजी महाराज ने कई बार बतलाया कि हमें (चच्चाजी साहब को) को उनके गुरुदेव अपने मित्रवत् (खिलौना) व्यवहार करते थे और उनके साथ हंसी आदि का वातावरण रहता था। परन्तु जब श्रीमान लालाजी महाराज वहाँ जाते

तो सब चुपचाप हो जाते। जब तक श्रीमान लालाजी महाराज वहाँ रहते, केवल कोई आवश्यक बात ही होती अन्यथा ध्यान आदि का वातावरण रहता। जब श्रीमान लालाजी महाराज वापिस जाते तो अपने गुरुदेव की ओर पीठ नहीं करते वरन् उलटे चलते। अतः हमारे दादागुरु महाराज ने भी यह नियम बना लिया था कि जैसे ही श्रीमान लाला जी महाराज जाने के लिए उठे तो आप उनके सलाम का उत्तर देकर मुंह फेर करके बैठ जाते तथा उनके पधारने के बाद वही हंसी मजाक का वातावरण चालू हो जाता।

उरई में पुष्पा देवी का जन्म

हमारे श्रीमान लालाजी महाराज के प्रिय शिष्य श्रीमान महात्मा भवानी शंकर जी उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड प्रान्त में राजकीय सेवा में रहे हैं। इनका मुख्य निवास स्थान उरई (जालौन प्रान्त) रहा। वहाँ आपने श्रीमान लालाजी महाराज के आध्यात्म का बहुत प्रचार किया। वहाँ इन्हें हमारे सत्संगी भ्राता चच्चा जी के प्रिय नाम से संबोधित करते हैं।

आपके साथ अनेकों ऐसी अद्भुत घटनाएँ हुई जिनमें श्रीमान लालाजी महाराज ने प्रत्यक्ष रूप से आपकी सहायता तथा रक्षा की। ऐसी घटनाएँ भक्तों के जीवन में अनेकों होती ही रहती हैं, जिनसे उन भक्तों की विशेष तथा अन्य भक्तजनों का सामान्य रूप से विश्वास अपने गुरुदेव में परिपक्व होता है। परन्तु ये भक्तजन इनका प्रचार नहीं करते क्योंकि उनके पूजने का यह एक कारण बन सकता है। जन साधारण उनके पीछे न पड़ जावें और उनके प्रियतम की याद तथा आराधना में विघ्न न पैदा करें। हमारे सत्संगी भ्राताओं की जानकारी हेतु एक घटना इन परम सन्त के परिवार के साथ हुई उसका उल्लेख करना भी आवश्यक समझते है।

सन् 1935 (कार्तिक सं० 1991) में आप मुन्सफी उरई में अमीन का कार्य कर रहे थे उन दिनों भाभीजी (उनकी धर्म पत्नी) गर्भवती थीं और छोटे बच्चों के अतिरिक्त और कोई इनके साथ न था। हमारे भाई साहब दौरे पर बराबर जाते रहते थे। भाभीजी ने आपसे आग्रह किया कि "मुझे अकेले में प्रसव के समय का ध्यान

आते ही घबराहट हो जाती है अतः आप छुट्टी लेकर घर पर ही रहें तो उचित होगा ।" आपने बतलाया कि मैं बाहर दौरे का काम निपटा चुका हूं और अब बाहर जाने का काम नहीं है। आसपास में थोड़ा जाना रहेगा सो दिन में कर लूंगा और घर पर ही रहूंगा । फिर भी यदि आवश्यकता के समय मैं घर पर न होऊँ तो तुम गुरु महाराज को याद कर लेना तुम्हें कष्ट न होगा।

कुछ दिनों के बाद वह समय भी आ ही गया और संयोगवश उस दिन आपको पास ही के स्थान के दौरे पर जाना पड़ा और वहाँ से रात्रि को देर से लौटना हुआ । हमारी भाभीजी ने संध्या समय सब कार्य से निबट कर बच्चों को भोजन आदि से निवृत्त करा कर सुला दिया और भाईसाहब के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थीं तो अचानक प्रसव पीड़ा आरम्भ हुई । आरम्भ में तो भाभीजी कुछ घबड़ाई परन्तु फिर आपके वचनों को याद करके गुरुदेव से प्रार्थना करने लगीं। उस समय उन्हें गुरुदेव के प्रत्यक्ष दर्शन हुए और सान्त्वना देने के पश्चात वे स्त्री रूप होकर भाभीजी को प्रसव-गृह में ले गए और समयानुसार सारा प्रबंध कर दिया । उनके आदेशानुसार भाभीजी राम राम कहती रहीं और उन्हें बिना कष्ट के प्रसव हो गया और कन्या का अवतरण हुआ जिन्हें पुष्पा देवी नाम दिया गया। इतने में ही आप (पूज्य भाईसाहब) दौरे से लौटे तो नवजात शिशु का रूदन सुनाई दिया। भाभीजी के कहने पर आपने दाई आदि को बुलवा लिया और अन्य स्त्रियाँ भी आ गईं। इन सब के आ जाने पर गुरुदेव अर्न्तध्यान हो गए। इससे पहले कन्या को गोद में लिए बैठे रहे।

उक्त घटना को पूज्य भाई साहब ने बहुत दिनों तक सार्वजनिक रूप से नहीं बतलाया फिर अन्ततः सत्संगी भ्राताओं के आग्रह पर स्वयं ने ही लिख कर सदाचार नामक अपनी पुस्तक में प्रकाशित कराया।

प्रसव आदि के विषय पर जब कभी कोई वार्तालाप अथवा अन्य प्रकार की चर्चा आने पर हमें उपरोक्त घटना में गुरुदेव की असीम कृपा और दया की याद आ जाती है जो हमें प्रेम विभोर कर देती है।

गाना

श्रीमान लाला जी महाराज को गाने की केवल रुचि (शौक) ही नहीं उन्हें इसका अभ्यास भी उच्च कोटि का था। आपका स्वर (आवाज) इतना मधुर था कि सुनने वाले अनायास ही आकर्षित हो जाते थे और मुग्ध होकर सुनते रहते थे।

आप जब कभी पूजा ध्यान के समय कोई भजन या गज़ल गाने लगते तो ध्यान की अवस्था इतनी घनी हो जाती थी कि हम सरीखे नौसिखिए तो कभी उनका पूरा गाना सुन ही न पाते थे। उनके एक दो पद होते उसी में ऐसी घनी समाधि लग जाती कि तन बदन की सुध ही न रहती।

वे सदा ही बिना किसी वाद्य यंत्र की सहायता के गाया करते थे। हारमोनियम तबला आदि के साथ नियमित आयोजन (महफिल) आपको पसन्द न था। इधर हमारे श्रीमान चच्चा जी महाराज ने तबला पखावज नियमित रूप से सीखा और उसका अभ्यास भी उच्च कोटि का किया था। भाईसाहब श्रीमान महात्मा बृजमोहन लाल जी का हारमोनियम पर गाने का बहुत अच्छा अभ्यास था।

एक रात्रि को श्रीमान लालाजी महाराज, श्रीमान पूज्य मौलवी साहब (परम सन्त मौलवी अब्दुल ग़नी ख़ाँ साहब) भोगाँव से पधारे हुए थे उनके पास बैठे कुछ बातें कर रहे थे। इतने में आपके कानों में तबला हारमोनियम तथा गाने की ध्वनि पहुंची तो श्रीमान मौलवी साहब से फ़रमाने लगे- "ये लोग मानते नहीं हैं। देखिये वही महफिल जमी है नन्हें (पूज्य चच्चा जी महाराज) तबला बजा रहे हैं ओर हारमोनियम पर गाना चल रहा है।"

भाई साहब महात्मा राधामोहन लाल जी (पूज्य चच्चाजी महाराज के द्वितीय पुत्र) जिन्होनें यह घटना स्वयं ही हमें सुनाई थी, वही श्रीमान मौलवी साहब के पास बैठे पैर दबा रहे थे, किसी बहाने उठे और महफिल में पहुंच कर एकदम गाना बजाना बद करने को कहा और बतलाया कि शिकायत हो गई है।

उधर श्रीमान लालाजी महाराज के कहने पर श्रीमान मौलवी साहब भी उठ खड़े हुए और महफिल के कमरे की ओर चल पड़े। इधर चेतावनी मिलते ही बाजा तबला आदि सामान हटा करके सब लोग लेट गए ओर सोने का उपक्रम बन गया। ऐसा लगता था कि बड़ी देर से सो रहे हैं।

यह देखकर दोनों संतों ने समझ तो लिया कि यह सब बनावटी निद्रा है परन्तु उनके विचारों के इस आदर युक्त भय की प्रशंसा करते हुए लौट गये।

हम जब कभी नियमित गाने बजाने की महफिल का आयोजन देखते हैं हमें श्रीमान लालाजी महाराज के विचार, उनके निषेध आदि की याद आ जाती है।

इस विषय में हमारे पूज्य भाईसाहब डाक्टर श्याम लाल जी (गाजियाबाद निवासी) ने बतलाया था कि फतेहगढ़ आई हुई एक थियेट्रिकल कम्पनी के मालिक ने श्रीमान लालाजी महाराज के गाने की प्रशंसा सुन कर उन्हें 200/- मासिक पर अपने साथ काम करने का प्रस्ताव भेजा था जो आपने अस्वीकार कर दिया। उन दिनों सन् 1920 ई के लगभग 200/- का क्या मूल्य था ? एक बड़े अफसर का वेतन इतना ही होता था।

गुमी हुई मिसल (File)

हमारे श्रीमान लालाजी महाराज जब कलैक्टरी फतेहगढ़ में महाफ़िज़ दफ्तर (Record Keeper) का कार्य कर रहे थे उन्हीं दिनों एक आवश्यक मिसल (File) कहीं गुम हो गई और बहुत ढूंढने पर भी नहीं मिली। महाफ़िज़ दफ्तर के रजिस्टरों से यह भी पता नहीं चल पाया कि ये मिसल किस को और कब दी गई। इस विषय में सीधा उत्तरदायित्व (जिम्मेदारी) आप पर ही आ पड़ा। उसी संध्या को आप कुछ चिन्तित (परेशानी) से मकान की छत पर टहल रहे थे और सदा की भांति अपने गुरुदेव के ध्यान में लगे थे। गुरुदेव को तो आप की लाज हर प्रकार रखने की चिन्ता रहती थी।

आपके ध्यान में एक दफ्तर के अहलकार (Clerk) की सूरत सामने आई।

वह कुछ डरा सहमा सहमा लग रहा था। आपने सब कुछ समझ लिया। नीचे उतरे, कपड़े पहने ओर उस अहलकार के घर पहुँचे और उस मिसल को जो उसके पास थी तुरन्त देने को कहा। वह क्लर्क घबरा गया। उसमें उस मिसल को पेश करने की हिम्मत नहीं थी। डर था कि उसको कलक्टर साहब कड़ा दण्ड देंगे। आपने उसे विश्वास दिलाया कि यदि वह मिसल दे देता है तो उसका नाम किसी को नहीं बतलायेंगे। इस प्रकार उससे मिसल आप ले आए और दूसरे दिन कलक्टर साहब को पेश कर दी और बहुत अनुरोध करने पर भी उस क्लर्क का नाम नहीं बतलाया। अपना ही अपराध स्वीकार किया। मिसल किसी ने न देखते हुए अपने कागजों के साथ बांध ली थी और अनजाने में उसके साथ चली गई अतः दफ्तर में रेकार्ड नहीं रहा। बात पुरानी हो गई याद भी नहीं रही। वह मिसल इस क्लर्क के पास थी और वह इसे वापिस जमा कराने या पेश करने में डर रहा था।

मुआइना (Inspection)

आपके पूरी अवधि होने के पहले ही पेन्शन ले लेने का भी ऐसा ही विचित्र कारण हुआ। कमिश्नर साहब का मुआइना (Inspection) था उसी दिन घर पर कुछ भाई लोग पहुँच गये। श्रीमान लालाजी उन सब की सेवा सुश्रूषा, आदर, सत्कार में कचहरी जाना ही भूल गये। डेढ़-दो बजे याद आई तो घबराये हुए दफ्तर पहुँचे। मालूम हुआ मुआइना हो चुका है और आपके साथियों ने बतलाया कि आपके रिकार्डों का मुआयना सबसे अच्छा रहा। जो फाइल माँगी आपने तुरन्त निकाल कर दे दी।

अब आपको ये सब क्या और कैसे हुआ समझने में देर नहीं लगी। आपके गुरुदेव ने ही सब कार्य किया था।

आपने पेन्शन के लिए आवेदन दे दिया। ऑफिसरों के आग्रह होने पर भी आपने सर्विस में रहना स्वीकार नहीं किया। आपको अपने गुरुदेव को अपने लिए ऐसा कष्ट देना कदापि सहन न था।

रोग की पहचान

पूज्य भाईसाहब परम संत डा॰ श्री कृष्ण लाल जी ने एक बार बतलाया था कि उन्हें रोग की पहचान (Diagnosis) के लिए श्रीमान लाला जी महाराज ने वरदान दिया था कि तुम्हारी रोग की पहचान गलत नहीं होगी और यह भी कहा था कि रोग की परीक्षा से यदि तुम्हारा अनुमान सही निकले तो भी जीभ से न कहना अन्यथा यदि वह रोग न भी हुआ तो तुम्हारे कथन से हो जायेगा। अतः सावधान रहना।

एक डाक्टर के लिये रोग की पहचान अत्यावश्यक है। उसका निदान (इलाज) कठिन नहीं। पुस्तकों में सभी रोगों के निदान भरे पड़े हैं। अतः पहचान करना डाक्टर के लिए अत्यावश्यक गुण है। आजकल तो सब प्रकार के टेस्टों के बाद भी डाक्टर नहीं कह पाते कि अमुक रोग है। शंका में ही रहते हैं।

पूज्य भाईसाहब अपने समय के एक सफल डाक्टर हुए थे। फिर बहुतों का निदान (इलाज) निःशुल्क (बिना फीस) कर देने पर भी उनकी कमाई अच्छी हुई जिसे भी उन्होंने बाँटा और अपने ऊपर नियमित ही खर्च किया।

मुझे पता है कि इन भाईसाहब ने अपने एक टाइपिस्ट शिष्य को ही होमियो डाक्टर बना दिया और उन्हें यह गुण भी प्रदान किया जिससे वे भी सफल डाक्टर बने। मेरा अनुमान है कि एक और भी सत्संगी डाक्टर को यह गुण पूज्य भाई साहब ने प्रदान किया है।

यादें

संस्मरण (भाग-2)
परम सन्त सद्गुरु श्रीमान महात्मा रघुवर दयाल जी महाराज
(श्रीमान चच्चा जी महाराज)

परिचय

आप परम सन्त सद्गुरु श्रीमान लाला जी महाराज के छोटे भाई थे। आपका जन्म 7 अक्टूबर सन् 1875 को हुआ। आपका लालन-पालन भी श्रीमान लालाजी महाराज के साथ साथ अपने पिता श्रीमान चौधरी साहब की ही देख रेख में हुआ। पिता के स्वर्गवास के पश्चात् आपने बड़े भ्राता श्रीमान लालाजी महाराज को ही अपने पिता के स्थान पर मान कर उनकी आज्ञा तथा इच्छा का अनुसरण इस प्रकार किया कि जिसका उदाहरण इस युग में मिलना कठिन ही नहीं असम्भव है। हां यदि हम भगवान राम के प्रति भक्त-श्रेष्ठ भरत जी का उदाहरण प्रस्तुत करें तो बहुत कुछ ठीक बैठ सकता है।

बचपन में आपका लालन-पालन भी बड़े ठाट बाट से हुआ परन्तु पिता के स्वर्गवास के पश्चात आपको भी उन्हीं कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिनका हमारे श्रीमान लालाजी महाराज को। परन्तु आपकी यह विशेषता थी कि आप पूर्णरूप से श्रीमान लालाजी महाराज पर आश्रित ही नहीं अपितु समर्पित अर्थात न्योछावर थे। उर्दू भाषा की उच्च शिक्षा तथा अँग्रेज़ी की थोड़ी शिक्षा प्राप्त करके आपने अपना प्रारम्भिक कौटुम्बिक जीवन ग्राम अलीगढ़ जिला फतेहगढ़ में व्यतीत किया। एक प्रतिष्ठित वकील श्रीमान मुन्शी चिम्मनलाल साहब के पास आप कार्य करते रहे तथा श्रीमान लालाजी महाराज के आदेशानुसार उन्हीं वकील साहब के पास अपना आध्यात्मिक अभ्यास भी करते रहे।

परम सन्त महात्मा श्री रघुवर दयाल जी-कानपुर

जन्म 7 अक्टूबर 1875-निर्वाण 7 जून 1947

अलीगढ़ ग्राम में तहसील का कार्यालय था और यह स्थान फतेहगढ़ से लगभग छः मील उत्तर दिशा में गंगा जी के पार गंगा, रामगंगा के बीच में था। फतेहगढ़ आने जाने के लिये गंगा जी पार करनी पड़ती थी। आपके ज्येष्ठ सुपुत्र महात्मा बाबू बृजमोहन लाल साहब ने फतेहगढ़ में श्रीमान लाला जी महाराज के संरक्षण तथा देखरेख में विद्याध्ययन किया व सन् 1923 में हाईस्कूल की परीक्षा पास करके पुलिस विभाग में नौकरी कर ली। जब इनकी पोस्टिंग कानपुर हुई तो फिर श्रीमान लालाजी महाराज सपरिवार कानपुर आकर रहने लगे।

आपके द्वितीय सुपुत्र श्रीमान राधामोहन लाल साहब ने भी फतेहगढ़ श्रीमान लाला जी महाराज के पास रहकर हाई स्कूल तक पढ़ा और सन् 1925 में हाईस्कूल परीक्षा पास करके कानपुर में जज साहब के कार्यालय में नौकरी कर ली। छोटे सुपुत्र महात्मा श्री ज्योतिन्द्र मोहन लाल, जो उस समय छोटे थे तथा अध्ययन कर रहे थे, कानपुर आकर पढ़ने लगे।

आपका अलीगढ़ निवास कठोर तपस्या का समय था। श्रीमान महात्मा श्री चिम्मनलाल साहब के निर्देशानुसार आपने कठिन तपस्या की। यहाँ तक कि कई-कई दिन निराहार रह कर तथा रात-रात भर जाग कर आध्यात्मिक अभ्यास की पराकाष्ठा पर पहुँचे। श्रीमान लालाजी महाराज ने आपकी इस कठोर तपस्या तथा आध्यात्मिक तीव्र प्रगति से प्रसन्न होकर अलीगढ़ में ही आपको परम संत सद्गुरु की पदवी प्रदान की।

श्रीमान लालाजी महाराज के प्रति आपके आदर तथा प्रेम के उत्तर में, जिस का वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं, आपके प्रति श्रीमान लाला जी महाराज का प्रेम भी अगाध था। वे अधिक समय तक उन्हें देखे बिना रह नहीं सकते थे। अतः लगभग मास में एक दो बार या तो श्रीमान लालाजी महाराज इनके पास पहुँचते थे या आप उनकी सेवा में उपस्थित हो जाते थे।

फतेहगढ़ में एक बार आप इतने अधिक अस्वस्थ हो गये कि आपके जीवित रहने की आशा भी क्षीण होती लगी। उस समय श्रीमान लालाजी महाराज की चिन्ता का ठिकाना न रहा। अपने गुरुदेव के द्वारा जो उस समय शरीर में नहीं

थे, बहुत कुछ अनुनय विनय के पश्चात आपकी विनती स्वीकार कर ली गई। कहते हैं कि श्रीमान लालाजी महाराज ने अपनी आयु का एक विशेष भाग आपको देना चाहा था। जिसकी स्वीकृति मिल गई। श्रीमान लालाजी महाराज तो अपनी आयु के 59 वर्ष भी पूरे नहीं कर सके तथा निर्वाण प्राप्त किया। परन्तु श्रीमान चच्चा महाराज आपके पश्चात लगभग 16 वर्ष तक आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्व साधारण की सेवा करते रहे। श्रीमान लालाजी महाराज के निर्वाण के पश्चात का आपका जीवन पूर्ण रूप से श्रीमान लालाजी महाराज के जीवन के अनुरूप रहा था तथा वे श्रीमान लालाजी महाराज का ही आध्यात्मिक कार्य जीवन पर्यन्त करते रहे।

मुझे पूज्य भाई साहब परम संत डाक्टर श्यामलाल जी साहब गाजियाबाद निवासी ने बतलाया था कि श्रीमान चच्चाजी महाराज फरमाया करते थे कि उनकी वापसी (अर्थात निर्वाण) पहले होगी और श्रीमान लालाजी महाराज की बाद में होगी। जब सन् 1931 में श्रीमान लाला जी महाराज की वापसी हो गई तब इन्हीं श्रीमान डाक्टर साहब ने श्रीमान चच्चाजी महाराज से फिर एक बार प्रश्न किया कि आप तो फ़रमाते थे आपकी वापसी पहले होगी और श्रीमान लालाजी महाराज की बाद में ! तो आपने बतलाया कि श्रीमान लालाजी महाराज ने अपनी आयु का एक भाग उन को दिया है इस कारण ऐसा हुआ।

सन् 1924 के पश्चात का समय आपका कानपुर नगर में ही बीता। आरम्भ में आपने एक छोटा सा मकान कर्नलगंज खटिकाना में लिया। कुछ वर्ष पश्चात जब आर्यनगर बसाया जा रहा था तब वहाँ आपके नाम कई प्लाट कर दिये गए। जिनमें से एक आपने अपने लिए रखकर बाकी अपने पास आने वाले अभ्यार्थियों को बाँट दिए। आपके रहने के लिए यहाँ एक मकान बन गया जिसका नाम रघुवर भवन तथा उस मार्ग का नाम सन्त शिरोमणि महात्मा श्री रघुवरदयाल मार्ग रखा गया।

जहां तक हमारे श्रीमान चच्चा जी महाराज का प्रश्न है हमने स्वयं देखा है कि पूज्य माता जी (धर्म पत्नी श्रीमान लालाजी महाराज) के सामने सदा हाथ बांध कर खड़े होते थे तथा उनकी प्रत्येक आज्ञा को बहुत अच्छा कह कर शिरोधार्य करते थे।

आप अपने गुरुदेव की याद में तथा आध्यात्मिक ध्यान में हर समय झूमते से रहते थे तथा सांसारिक भावनाओं को सदा ही भूले हुए रहते थे। गृहस्थी संचालन का कार्य आपकी धर्मपत्नी तथा आपके सुपुत्र श्रीमान महात्मा राधामोहन लाल जी ही देखते और करते थे। आप पूर्णतया जीवन मुक्त थे। ऐसी दशा होते हुए भी आप पूर्ण व्यवहार कुशल थे। ब्राह्मण कुल के कोई भी महानुभाव आते तो आप उन्हें सदा ही पंडित जी पालागन कह कर सम्बोधित करते थे। छोटे बड़े सबसे उनके अनुरूप ही वार्ता करना आपकी विशेषता थी।

आध्यात्म के गूढ़ तत्वों को भी इतनी सरल भाषा में समझा देते कि बड़े-बड़े विद्वान आश्चर्यचकित रह जाते। अधिकारियों को आध्यात्म की ऊँची से ऊँची दशा पर अपनी शक्ति से पहुँचा कर समझा देते कि यह अमुक स्थान तथा अवस्था है इसे समझ लीजिए। आप के दरबार में एक बार भी यदि कोई पहुंचा तो आध्यात्म का संस्कार लिये बिना नहीं लौटा।

इस प्रकार जन साधारण के पथ-प्रदर्शन का कार्य करते हुए आप 7 जून 1947 को निर्वाण प्राप्त हुए। आपकी समाधि कानपुर नगर के बाहर हमीरपुर रोड़ पर बनाई गई। बसन्त पंचमी पर आप अपने जीवन काल में श्रीमान लालाजी महाराज का उनकी जन्म तिथि भण्डारा किया करते थे। वही भण्डारा बसन्त पर प्रतिवर्ष अब भी होता है। इस अवसर पर हमारे सत्संगी भाई घर तथा समाधि पर एकत्रित होते है। सामूहिक पूजा ध्यानादि होता है और शांति तथा प्रेम की ऐसी वर्षा होती है कि आने वाले सभी आगन्तुक उसमें सराबोर हो जाते है।

आपका विस्तृत जीवन चरित्र कानपुर से श्री प्रकाशचन्द वर्मा (536, आनन्द बाग पार्क, कानपुर) द्वारा प्रकाशित कराया जा चुका है। आपके एक प्रमुख शिष्य श्रीमान महात्मा शिवनारायण दास गाँधी जी ने, जो आपके नित्य प्रति के उपदेश डायरी में लिख लेते थे, इन सब को पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक पीयूष वाणी भी इन्हीं महानुभाव श्री प्रकाशचन्द जी ने प्रकाशित कराई है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि इन परम सन्त महात्मा के दिव्य जीवन को अपने दैनिक जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। इसी में कल्याण है।

दीक्षा

मुझे अपने विद्यार्थी जीवन में कई वर्ष श्रीमान चच्चा जी महाराज की सेवा में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके पश्चात भी उनकी सेवा में समय-समय पर जाता रहा। वैसे मेरे दीक्षा गुरु तो श्रीमान लालाजी महाराज ही हैं, जिन्होनें कृपा करके मुझे मार्च सन् 1928 में अपनाया। परन्तु श्रीमान लालाजी महाराज के पास रहने का अधिक सुअवसर मुझे दुर्भाग्यवश नहीं मिला। गुरुदेव श्रीमान लालाजी महाराज के सन 1931 में निर्वाण के बाद लगभग 16 वर्ष तक आप सारे सत्संग परिवार का आध्यात्म से सिंचन करते रहे तथा मेरा सम्पर्क आप से ही पूर्ण रूप से बना रहा। मुझे इस मार्ग में सारा मार्ग दर्शन आप ही से मिला और आज भी मिलता है।

प्रथम दर्शन

टोंक (राजस्थान) से सन् 1925 में हाई स्कूल पास करके मैं कानपुर कालेज में पढ़ने गया। मेरे भाई साहब बाबू आनन्द स्वरूप जी वहां रहते थे और श्रीमान चच्चा जी महाराज की सेवा में जाने वालों में एक पुराने अभ्यासी थे। एक संध्या को वे मुझे भी अपने साथ ले गए और श्रीमान चच्चा जी महाराज के सामने बैठा दिया। थोड़ा सा परिचय दे दिया। श्रीमान जी मुझ से थोड़ी बात करके अपने परिवार के सदस्यों, भाई साहब आदि से बातें करते रहे। लौटते समय मुझ से कहा जब फुरसत हो कभी-कभी हमारे पास आ जाया करो। मेरी आयु उस समय केवल 17 वर्ष की थी। श्रीमान के विषय में मैं क्या समझ सकता था ? परन्तु कुछ आकर्षण (खिंचाव) के कारण उनके पास जाने लगा। कुछ दिनों बाद आपने मुझे अभ्यास बतलाया और कराया। आज्ञा दी कि इसे रोज प्रातः कर लिया करो।

पूजा

मेरे परिवार में तो सब सदस्य वैष्णव विचारधारा के थे परन्तु मूर्तिपूजा की ओर मेरा झुकाव कम होने के कारण मैं महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की बतलाई

आर्य समाज की पूजा नित्य किया करता था। अब दो पूजा हो गई। मूर्तिपूजा के स्थान पर पुरुष पूजा को स्थान देना पड़ा। धीरे-धीरे आर्य समाज की पूजा छूट गई और यह पुरुष पूजा ही बढ़ते-बढ़ते प्रभु की पूजा (गुरु रूप में) परिणीत हो गई। अब हवन, पूजा आदि में जब कभी संस्कृत के मन्त्रों का उच्चारण सुनने या करने का अवसर आता है तभी श्रीमान चच्चा जी महाराज के उन पुराने आदेशों की याद और उन आदेशों के साथ साथ उनकी याद आये बिना नहीं रहती। कैसी सरलता से इन आडम्बरों से छुड़ा कर आपने मुझे सीधी राह पर लगाया।

प्राणायाम

मुझे आरम्भ के विद्यार्थी जीवन में प्राणायाम करने में रुचि थी और जैसा कि मैंने आर्य समाज की पुस्तकों में प्राणायाम के विषय में पढ़ा था, उसके अनुसार सीधा तन कर बैठ कर नाक पर हाथ रख कर प्राणायाम भी किया करता था। एक बार श्रीमान चच्चा जी महाराज को बतलाया कि मैं प्राणायाम भी करता हूं। आपने बतलाया कि यह बहुत कठिन साधन है और बिना नियमित रूप से सीखे इसे करने से कभी कभी बड़ी हानि हो जाती है। मैंने तुरन्त बन्द कर दिया। फिर एक बार आपने स्वयं ही बतलाया कि इस प्रकार प्राणायाम किया करो- "कुछ नहीं है सिवाय ईश्वर के"। मुझे तो पुरानी रुचि थी ही मैंने बड़े प्रेम से इसे करना आरम्भ कर दिया।

एक संध्या को गंगा किनारे घाट पर बैठ कर मैंने यही प्राणायाम किया और साँस खींच कर चढ़ाई तो थोड़ी देर बाद पाया कि मैं बेसुध होकर सामने औंधा गिर पड़ा हूं, मुझे नाक पर चोट भी लगी और जोर का चक्कर दिमाग में आ गया। थोड़ी देर में संभल गया। फिर जब श्रीमान जी की सेवा में गया तो ये सारी बातें बतला दीं। आपने अपने सामने करने की आज्ञा दी और मैंने उसी प्रकार सांस चढ़ाई और मैं सामने गिरने लगा तो आपने पकड़ कर उठा दिया। बतलाया बेटे ! हमने यह सब केवल ध्यान (ख्याल) से करने को बतलाया था, तुम तो सांस को उपर चढ़ा गये। अब केवल ख्याल से करो, शारीरिक खेंचतान न हो।

उसके पश्चात मैंने नियमित रूप से इसे किया। उस दिन की उन की आज्ञा

की याद यह प्राणायाम करते समय मुझे सदा ही आ जाती है विशेषकर जब मैं उनके सामने भी गिरा और उन्होंने मुझे गिरने नहीं दिया।

चौमुखा जाप

एक बार आपने मुझे "चौमुखा जाप" बतलाया। यह जाप प्राणायाम का ही एक रूप है। मैं उसे करने लगा। कुछ समय बाद एक बार मैं उनके पास बैठा था और वे स्वयं यह जाप कर रहे थे। मुझ से पूछा "करते हो ?" मैंने उत्तर दिया "नित्य प्रति करता हूं।" प्रतिदिन यह जाप करते समय उनकी उस दिव्य मूर्ति की जो उस समय देखी थी याद बनी रहती है।

आप सब की सूचना के लिये यहां यह लिखना आवश्यक होगा कि परम पूज्य श्रीमान लालाजी महाराज ने भी लिखा है कि यह जाप उनके गुरुदेव हुजूर महाराज पर उतरा था अर्थात भगवान की ओर से बतलाया गया था और उन्होंने इसे जीवन भर किया बहुत शान्ति रही। मेरे विचार में इसे गुरु की आज्ञा तथा उन के बतलाये अनुसार ही करना चाहिये। किताब में पढ़ कर या देखा देखी नहीं करना चाहिए।

अन्य जाप प्रार्थना आदि

वैसे तो आप अधिकतर भाई लोगों से घिरे रहते थे। हुक्का चलता रहता था और हंसी की बातें अधिकतर हुआ करती थीं परन्तु जब कभी अकेले होते तो माला पर अथवा कभी कभी उँगलियों पर ही जाप चालू रखते। मुझे भी आपने कृपा करके कुछ मन्त्र जाप करने के लिए बतलाए। आरम्भ में मुझे बड़ी कठिनाई हुई। एक सैट पूरा करने में एक घण्टा लग जाता, कभी इससे भी अधिक। सेवा में निवेदन किया तो हँसने लगे और बोले हम तो एक घण्टे में कई-कई सैट पूरे कर लेते हैं। किये जाओ सब सरल हो जायेगा। ऐसा ही हुआ अब एक घण्टे में मैं भी कई सैट कर लेता हूं और उनके आदेशों की याद कर लेता हूं।

वे कई घण्टे माला से अथवा उँगलियों पर इस प्रकार जप किया करते और

मैं बैठा उन्हें देखता रहता। कभी आँख बन्द की तो 15, 20, 25 मिनट के लिए गोता लग गया और आनन्द के समुद्र में जी भर कर स्नान हो गया। आपका कहना था कि जो भी जाप जितना भी अपने नित्य कर्म में बांधो या बढ़ाओ वह सदा के लिए बंध गया अर्थात बढ़ गया। फिर उसमें कमी नहीं करनी चाहिए। इससे प्रभु की याद हर समय बनाए रखने में बड़ी सहायता मिलती है। आज मैं उनकी इन बातों का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूं।

इसी प्रकार वे कई प्रार्थनाएँ भी करते थे। आपने इनमें से दो प्रार्थनाएँ मुझे भी बतलाई जिन्हें मैं दिन में कई बार कर लेता हूं और उन्हें अपने पास या साथ पाता हूं।

डायरी

आपने एक दिन आज्ञा दी कि अपनी दिनचर्या की डायरी लिखा करो। मुझे हिन्दी में डायरी लिखने का पहले से ही अभ्यास था। आपको उर्दू भाषा का अच्छा ज्ञान था। अतः अब में उर्दू में लिखने लगा। जब वह देखते तो कई शब्द जो उर्दू भाषा का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण मैं अशुद्ध लिख जाता था, उनको आप हाशिये पर सही करके लिख देते। कभी-कभी डायरी पर ही कुछ आदेश भी लिख देते। मैंने आपकी कलम से डायरी पर ही कुछ आदेश अपने पास सुरक्षित रख छोड़े हैं। कभी कभी उन्हें देख कर पढ़ कर याद करता हूं और आत्म निरीक्षण कर लेता हूं कि मैं उन आदेशों के पालन में भूल तो नहीं करता।

कभी सन् 1960 में हमारे एक भाई साहब रिटायर्ड जज श्रीमान जगन्नाथ प्रसाद जी माथुर ने जो परम पूज्य भाई साहब डा॰ चतुर्भुज सहाय जी के शिष्य थे, मुझसे यह इच्छा व्यक्त की कि हमें इन महापुरुषों के दर्शनों का सौभाग्य तो मिला ही नहीं कहीं इनके लिखे हुए कुछ अंश देखने को मिले तो अपना सौभाग्य समझेंगे। मैंने उन्हें अपनी यह डायरी दे दी अपनी डायरी के पढ़ने का अधिकार भी दे दिया। वे बहुत प्रसन्न हुए।

संयोगवश उस डायरी में हमारी सन्त परम्परा की वंशावली उर्दू में लिखी

हुई थी। इस वंशावली की उन्हें खोज थी क्योंकि यह उनको अपने गुरुदेव द्वारा नहीं मिल पायी थी। मैंने डायरी के उस भाग की प्रतिलिपि लेने का अधिकार भी उन्हें दे दिया। वे मुझ से और भी अधिक प्रसन्न हो गए। वे मुझसे आयु शिक्षा तथा अनुभव (तजुर्बे) में कहीं अधिक बड़े थे अतः मैं तो उनके आशीर्वाद की ही कामना करता हूं। कुछ वर्ष पहले इनका स्वर्गवास हो गया। जो महानुभाव हमारी इस सन्त परम्परा में दीक्षित हुए है इस वंशावली का नित्य पाठ करना चाहिए। इसके द्वारा हमारा सम्बन्ध गुरु परम्परा के गुरुजनों से तथा प्रभु से परिपक्व होता है। इस विषय में अपनी आवश्यकतानुसार अपने गुरु से सम्पर्क करना चाहिए।

तरीक़त

श्रीमान चच्चा जी महाराज का कहना था कि यदि लगे रहे तो आध्यात्म विद्या तो तुम्हें मिल ही जायेगी, हमारे पास रहकर तुम्हें तरीक़त सीखना चाहिए। तरीक़त से आपका अभिप्राय रहन-सहन, बातचीत, खानपान, बैठने-उठने, चलने-फिरने आदि के ढंग से था। आपका कहना था कि इन सब बातों को देखकर अपने जीवन में उन्हें उतारने से इस विद्या के सुरक्षित रखने में और नित्य प्रति इसमें उन्नति करते रहने में बड़ी सहायता मिलती है। इन बातों को ऐसा उतारिये कि आपके रहन-सहन इत्यादि पर अपने गुरुदेव के प्रेम की छाप सी लगी दिखने लगे और देखने वाले भी यह समझने लगें कि यह अमुक महात्मा के अनुयायी हैं। वैसे ऐसा व्यवहार करने पर अपने गुरुजनों की याद आती रहना तो स्वाभाविक ही है।

सन् 1960 की बात है एक बार संध्या समय जयपुर में हम पाच छः साथी बाहर चबूतरे पर बैठ कर पूजा ध्यान आदि से निवृत्त हुए ही थे कि हमारे एक भाई साहब आ गए। ये भाई साहब कभी फतेहगढ़ में अध्यापक रह चुके थे। मुझे देखकर एकाएक ही उनके मुख से निकल पड़ा "भाई हर नारायण ! हम मान गए कि आप हमारे मुन्शी जी (श्रीमान लाला जी महाराज) के शिष्य हैं। मैंने निवेदन किया कि मुझ से कोई गलती तो नहीं हो गई, कृपया बतलावें। आपने मेरे सिर पर रक्खी टोपी की ओर संकेत किया और कहा कि आज कल पढ़े लिखे लोगों में कौन टोपी लगाता

है ? आप जैसे ही अपने बुजुर्गों की तक़लीद (रति-रिवाज का पालन) कर लेते हैं।

जब कभी हम अपने दफ्तर में अथवा किसी अफसर के सामने जाते हैं तो देख लेते हैं कि हम कपड़े आदि ठीक से पहने हैं और वहां पहुँच कर भी आदरभाव (अदब) से व्यवहार करते हैं। जब हम पूजा में बैठते हैं तो हम अपने आपको उस महान प्रभु के सामने प्रस्तुत करते हैं जिसने न केवल इन अफ़सरों को परन्तु सारे विश्व को रचा है और वह सृष्टि मात्र का स्वामी है। क्या हमें ऐसे समय आदर सत्कार के साधारण नियमों को भी भूल जाना चाहिए ?

गीता

सन् 1926 की बात है कि एक शनिवार की संध्या को मैं कालेज में गीता क्लास में थोड़ा रुक गया और आपकी सेवा में देर से पहुँचा। उनके पूछने पर जो कुछ वहाँ सुना था बतला दिया। बात आई गई हुई परन्तु आपने यह समझ लिया कि मुझे गीता पढ़ने की रुचि है। कुछ दिनों बाद आपने बतलाया कि रामायण का पाठ नित्य प्रति नियमित रूप से करना चाहिए और मुझे इंगित कर विशेष रूप से कहा कि गीता एक बड़ा जटिल ग्रन्थ है, आसानी से समझ में नहीं आता। विद्वान लोग इसके शब्दों के अर्थों में उलझ कर रह जाते हैं, उसमें जो आध्यात्म भरा पड़ा है, वह अभ्यास करने वालों को अनुभव के बाद कुछ समझ में आता है। अतः तुम इसे अभी मत पढ़ो और यह दोहा पढ़ा -

गीता पढ़ रीता रहा, आया नहीं विवेक,
उलझे यामें बहुत से, सुलझा कोउ एक।

महात्मा के वचन कितने सरल तथा सत्यता से ओत-प्रोत होते हैं यह थोड़ी देर से समझ में आता है। बहुत वर्षों के बाद जब उनकी दया व कृपा से आध्यात्म के मार्ग में मेरी कुछ प्रगति हुई तो वही गीता जैसी अब समझ में आती है, वैसी उसे उस आयु में कदापि नहीं समझ सकता था। भगवान कृष्ण ने गुरु रूप में, महाराज अर्जुन को शिष्य रूप में, अपनी शक्ति से सारी रचना भूत, वर्तमान, भविष्य व्यक्त अव्यक्त सब कुछ उन क्षणों में दिखला कर अपना कर्तव्य समझा दिया तथा

उन्हें कर्तव्य पालन के लिए तत्पर कर दिया। क्या विद्वानों के पास इस प्रश्न का उत्तर है कि दोनों सेनाएं युद्ध के लिए तैयार हैं शंख बज चुके, अर्थात युद्ध प्रारम्भ होने के संकेत हो चुके हैं उस समय गीता का ज्ञान भगवान कृष्ण ने दिया और सेनाएं कई घण्टे प्रतीक्षा करती रहीं ? गीता के केवल मूल पाठ में ही कई घण्टे लगते हैं ? इस प्रश्न पर विचार करें, तो सम्भव हैं गुरु कृपा से कुछ समझ में आ जाये। भगवान का एक रूप काल भी है वे जब चाहें जिसके लिए चाहें काल को घटा बढ़ा भी सकते हैं।

छोटी-छोटी बातें

बात तो छोटी ही है परन्तु हमें तो वह भी अपने गुरुदेव की याद दिलाती है। अतः हमारे लिए तो इसका बड़ा मूल्य है। एक बार कानपुर में घर पर मैं पहुंचा तो भाई साहब (महात्मा श्रीमान राधामोहन लाला जी) चारपाई पर बैठे भोजन कर रहे थे बोले आओ हरनारायण ठीक समय पर आए, हम प्रतीक्षा कर ही रहे थे। मैंने हाथ धोये और उनके पास बैठ कर भोजन आरम्भ कर दिया। इतने में ही श्रीमान चच्चा जी महाराज बाहर से अन्दर आये, तो मुझे देखकर बोले, "हरनारायण तुम जूते पहन कर खाना खाते हो ?" मैंने तुरन्त ही अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा "गलती हो गई।" तुरन्त जूते उतारे और फिर हाथ धो कर भोजन करने बैठ गया।

अब जब कभी भी ऐसा अवसर आता है तो मैं जूते उतारने का विशेष ध्यान रखता हूं और श्रीमान चच्चा जी महाराज के आदेश के साथ-साथ उनकी पूरी पूरी याद भी कर लेता हू।

हम देखा करते थे कि जब वे जूते पहनते तो पहले दाहिना फिर बायाँ पैर जूते में डालते और उतारते समय पहले बायाँ फिर दाहिना। इसी प्रकार जब पूजा के लिए स्थान (आसन) पर बैठते तो पहले दाहिना और फिर बायाँ पैर रखते, उठते समय पहले बायाँ फिर दाहिना पैर हटाते। हमने भी ऐसा ही करना आरम्भ कर दिया और हमें हर बार उस समय उनकी याद आये बिना नहीं रहती। एक बार आपने आदेश दिया कि पेशाब करने के बाद कुल्ली कर लिया करो। मैंने आपको

देखा कि आप पेशाब के बाद कम से कम दो कुल्ली करते थे। मुझे आज्ञा पालन करते समय अनायास ही उनकी याद आ जाती है कि किस समय किस प्रकार वे हाथ धोते ओर कुल्ली करते थे।

यह बातें इतनी छोटी हैं कि साधारण जीवन में इनका कोई बड़ा मूल्य हो ऐसा नहीं है। परन्तु हमारे लिए इनकी अनिवार्यता प्रत्यक्ष है क्योंकि हमें गुरुदेव की याद दिला देती है। आज्ञा पालन तो है ही।

आलू

कभी जब भाई साहब महात्मा श्री जगमोहन नारायण जी फतेहगढ़ से आ जाते तो श्रीमान चच्चा जी महाराज बहुत प्रसन्न होते और कहते "लो भाई अब तो जग्गू आ गये बनने देवें चटनी दार आलू।" ये आलू श्रीमान चच्चा जी महाराज को तथा श्रीमान भाई साहब दोनों को विशेष रुचिकर थे और घर में भी सब लोगों को अच्छे लगते थे। भाई साहब स्वयं ही बड़े चाव से आलू व चटनी आदि तैयार करते और सब लोग बड़े आनन्द के साथ बैठ कर खाते। वैसे भी आलू की हर प्रकार की तरकारी घर में सब को पसन्द थी और श्रीमान चच्चा जी महाराज तो कभी-कभी कहा भी करते थे कि आलू के बिना रसोई का क्या स्वाद ?

हमें आलू इसलिए अच्छा लगता है कि हमारे श्रीमान चच्चा जी महाराज को अच्छा लगता था। थोड़ा सोचिए, ऐसे सन्त जो संसार की सृष्टि की अच्छी से अच्छी वस्तु को भी अपने ध्येय के सामने तुच्छ समझते थे, क्या आलू अरबी के स्वाद में पड़ते थे ? परन्तु हमारे गुरुजनों का ध्येय ही मानव जीवन का ऊँचे से ऊँचा आदर्श प्रस्तुत करने के साथ साधारण गृहस्थ जीवन का आदर्श प्रस्तुत करना भी था।

पागल हाथी

आपने एक बार निज बीती इस प्रकार हम सब को सुनाई कि जब आप लगभग 14 वर्ष के होंगे एक बार घोड़े पर सवार नगर (फरूख़ाबाद) से होकर निकल

रहे थे। सामने से कुछ लोग भागते हुए और चिल्लाते हुए दिखाई पड़े। तुरन्त ही आपने देखा कि एक पागल हाथी उधर की ओर लपका आ रहा है। आपने घोड़ा तुरन्त मोड़ा और दौड़ा दिया। हाथी जब पागल होता है तो घोड़े से उसे विशेष चिढ़ होती है। अतः हाथी घोड़े के पीछे दौड़ गया। पागल हाथी अपने नशे की हालत में चलता भी तेज ही है। कहते हैं घोड़े और उसके सवार को उससे बचना कठिन ही नहीं, एक सौभाग्य की ही बात होती है।

आगे-आगे आप घोड़ा दौड़ाते हुए, पीछे हाथी लगा हुआ आ रहा था। अपने देखा कि घोड़ा थका जा रहा है, हाथी पकड़ लेगा। आपने इधर उधर देखा और बचने की युक्ति आपकी समझ में आ गई। जैसे ही आप नहर के पुल पर पहुँचे तो आपने घोड़ा रोका और नहर के उपर की पट्टी पर उतार दिया और थोड़ी दूर जाकर रोक दिया। हाथी पुल तक तो चला आया क्योंकि उसने आपको वहां तक देखा ही था। फिर घूमा और देखा कि घोड़ा और आप नहर पर आराम से खड़े हैं। घोड़ा सुस्ता रहा है। हाथी नहर की पट्टी पर उतरा और इनकी ओर लपका आपने घोड़े को सीधा करके एड़ लगाई तो घोड़ा नहर में कूद गया। नहर 4- 5 फुट चौड़ी थी और पानी उपर तक भरा बह रहा था।

हाथी ने घूम कर देखा, पहले तो पानी में होकर जाने के लिए बढ़ा फिर उसे पानी का डर लगा। हाथी जब पागल होता है तो पानी से उसे विशेष डर लगता है। अतः रुक गया। मुड़ कर सड़क पर आया और पुल की दूसरी ओर जाकर देखा। घोड़े को और आपको सामने देखकर फिर लपका, मगर जब हाथी थोड़ी दूर पर ही था आपने पहले की भांति घोड़ा नहर पर से फिर दूसरी ओर कुदा दिया और आराम से खड़े हो गये। हाथी फिर मुड़ा और सड़क पर जाकर पुल पार करके नहर की पट्टी पर दौड़ा आया। आपने फिर घोड़ा नहर पर से कुदाया और उस पार जाकर खड़े हो गये। घोड़े को नहर लांघने में ही थोड़ा परिश्रम होता था और बहुत समय आराम करने को मिल जाता था। इस प्रकार कई बार घोड़ा इधर से उधर और उधर से इधर कुदाने में हाथी को बड़ी दौड़ पड़ी और वह बुरी भांति थक गया। इनका घोड़ा आराम मिलने के कारण फिर से स्वस्थ हो चुका था। अब ये नहर कुदाकर सड़क पर आये और घोड़ा दौड़ाते हुए घर आ गये। हाथी इतना थक गया

था कि इनके पीछे वैसी शीघ्रता से नहीं दौड़ सका। यह हाथी किसी नवाब साहब का था। हाथी के महावत और दूसरे लोग उसे संभालने दौड़े आ रहे थे। उन्होंने अपनी तरह से हाथी को वश में किया होगा, इस चर्चा से हमारा क्या प्रयोजन ? इधर श्रीमान चच्चा जी महाराज के इस प्रकार घोड़ा भगाने का समाचार आपके पिता श्रीमान चौधरी साहब को मिल ही चुका था। उनके आदमी भी भाग दौड़ में लगे थे। इन्हें पहुंचा देखकर सब को सन्तोष हुआ।

हमारे यहां राजस्थान में अब भी हाथी बहुत हैं। जब भी हम हाथी को देखते हैं तो हमें श्रीमान चच्चा जी महाराज की सुनाई हुई यह घटना याद आ जाती है। साधारण कहानी आदि के समय बच्चों को हम यह घटना सुनाया करते हैं तो बच्चे इसमें बड़ा आनन्द लेते हैं और हम गुरुदेव की याद का आनन्द लेते रहते हैं।

तबला

श्रीमान चच्चा जी महाराज ने नियमानुसार तबला, पखावज और मृदंग बजाने की शिक्षा ली थी और किसी समय इन्हें इतना अच्छा अभ्यास था कि इस विद्या के जानने वालों में आपका विशेष आदर होता था। उन दिनों कालका और विन्दा नाम के दो कत्थक नर्तक लखनऊ के थे जिन को उस समय नाट्य विद्या का गुरु कहा जाता था। एक बार इनके नाच में आपको भी तबला बजाने के लिए आमन्त्रित किया गया आप तबले पर बैठे तो विन्दा नाचने को खड़ा हुआ और इनके तबले की जानकारी से बहुत प्रसन्न होकर देर तक नाचता रहा। अब आपके मन में आया कि इस महफिल में हमें अपनी विद्या का थोड़ा परिचय देना चाहिए।

इस विद्या के जानकारों का कहना है कि यदि तबला ठीक बजता हो तो नाट्य विद्या के जानकार के पैर अपने आप उठते और तबले के सहारे थिरकते रहते है। आपने इस प्रकार इस कत्थक-नर्तक को तबले की ताल पर बांध कर कहा "होशियारी से" अर्थात उसको चेतावनी दी। फिर तबले पर सीधे और बाएं पैर उठने की अलहदा-अलहदा तालों को कुछ ऐसा पास करते गए कि एक बार दो तालें पास आते-आते एक साथ आ गई। विन्दा के दोनों पैर एक साथ उठ गये और वे गिर पड़े

। आपने फिर आवाज लगाई "खबरदार उठना मत" और उसी तबले की तर्क, को अलहदा किया और विन्दा नाचता हुआ ही उठा। विन्दा और उसका भ्राता कालका दोनों तो इस कला को देखकर बहुत प्रभावित हुए ही, परन्तु जितने भी नृत्य को देख रहे थे वाह-वाह कर उठे और उनकी इस विद्या की बड़ी प्रशंसा हुई।

तबले पखावज में क्या निपुणता है, क्या बारीकी है और यह सब कैसे हुआ, हम इस विषय में कुछ नहीं जानते हैं। अतः इस घटना के लिखने का यही अभिप्राय है कि कहीं तबले पर नाच आदि का कार्यक्रम टी०वी० पर देखते हैं तो हमें अपने गुरुदेव की याद आये बिना नहीं रहती।

पखावज

इसी प्रकार की एक घटना सन् 1925 की है। कानपुर नगर में दिसम्बर के मास में इंडियन नेशनल काँग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसकी सभापति श्रीमती सरोजनी नाइडू बनी। उन्हीं दिनों कानपुर नगर में म्यूजिक कान्फ्रेन्स का ही आयोजन हुआ जिसमें भारत के जाने माने कलाकार भाग लेने आये। हमारे गुरुदेव श्रीमान लाला जी महाराज को भी इस में रुचि थी। वे श्रीमान चच्चाजी महाराज भाईसाहब व कई भाई म्यूजिक कान्फ्रेन्स के सीजन टिकट लिये हुये थे।

एक रात्रि को पंडित विष्णु दिगम्बर पुलस्कर नाम के गायन विद्या के बड़े आचार्य जब मंच पर आसीन हुए तो उन्होंने पूछा कि हमारे श्रोतागण अब कौन-सा राग सुनना चाहते हैं, वही मैं सुनाऊँ। एक विद्वान ने उनको एक विशेष राग सुनाने का आग्रह किया। पंडित जी कहने लगे इस राग के साथ पखावज का अच्छा अनुभवी बजाने वाला आवे तो मैं आपको अवश्य यह राग सुना सकता हूं।

देव योग से उस कान्फ्रेन्स में कोई पखावज का कलाकार आया ही नहीं था। लोग इधर उधर देखने लगे। श्रीमान चच्चा जी महाराज के बारे में एक सज्जन को जानकारी थी। उन्होंने पंडित जी को जाकर बतलाया और यह भी कह दिया कि इस समय आपकी सभा में वे अपने बड़े भ्राता के साथ बैठे हैं, उनकी आज्ञा होने पर ही वे यह कार्य करेंगे। पंडित जी ने वहीं से निवेदन किया और अपने विश्वस्त चेले

को भेजा। श्रीमान लालाजी महाराज ने इनके बहुत कहने पर भी कि अब तो मेरा अभ्यास भी छूट गया है, इन्हें जाने की आज्ञा दी।

श्रीमान चच्चा जी महाराज मंच पर गये और अपना अभ्यास ताजा करने के लिए 4-5 मिनट का समय मांगा जो दे दिया गया। ये जो पखावज पर बैठे तो 5 मिनट से कहीं अधिक समय तक बजाते रहे और केवल पखावज को ही सारे दर्शक मन्त्र मुग्ध होकर सुनते रहे। फिर जब ये रुके तो पंडित जी ने इनकी विद्या की बड़ी प्रशंसा की और फिर वह राग भी दर्शकों की इच्छानुसार सुनाया। पखावज व मृदंग अब तो कभी-कभी कहीं देखने को मिलती है। इनका रिवाज ही सच कहिये तो उठ सा गया है। परन्तु हम तो जब भी इस वाद्य यंत्र को देखते हैं तो हमें श्रीमान चच्चा जी महाराज की याद आये बिना नहीं रहती। मंदिरों में विशेषकर मथुरा वृन्दावन में पखावज मृदंग देखने सुनने को मिल जाते हैं और भी बड़े बड़े मंदिरों में इसको देखा और सुना है।

एक कौर चावल

श्रीमान चच्चा जी महाराज ने एक बार हम सब को बतलाया कि 14-15 वर्ष की आयु में एक बार आप हिमालय के पहाड़ों पर घूमने निकल गये। संयोगवश ऐसा हुआ कि आप आठ दिन तक घूमते रहे परन्तु कहीं कुछ भोजन नहीं मिला। आप भूखे प्यासे एक साधु की धूनी पर जा निकले और उस साधु के पास जाकर बैठ गए। साधु ने उनकी ओर देखा और भूख के मारे उतरा हुआ मुख-मण्डल देखकर पूछा "बच्चा कितने दिन हो गए भोजन नहीं मिला।" आपने बताया। साधु ने कहा "बच्चा बैठो तुम्हारे लिए कुछ प्रबन्ध करता हूं।"

यह कह कर साधु उठा। थोड़ी दूर जाकर जमीन में से एक तीन-चार इंच लम्बी फली के आकार की कोई जड़ी खोद कर लाया और उसे अपनी धूनी के पास थोड़ा लम्बा गड्ढा करके गाड़ दिया और धूनी की गरम राख उस पर सरका दी। आपसे बातें करता रहा। थोड़ी देर पीछे बोला "बच्चा उस पेड़ से पत्ता तोड़ लाओ।" पत्ता रखा और साधु ने वही फली निकाली और उसका छिलका जाली से पकड़

कर चीर दिया। फिर उस पत्ते पर उस फली को झाड़ू दिया तो उस में से चावल की तरह का पदार्थ निकला जो सब कुछ मिलाकर एक छोटा कौर होता था। कहा 'बच्चा इसे खा लो'।

श्रीमान चच्चाजी महाराज ने उस आयु में अच्छा व्यायाम किया था। शरीर भी गठा हुआ था और भोजन भी साधारण से अधिक करते थे, मन में हँसे कि इतने चावल से मेरा क्या भला होगा। खा लिया। आपने हमें बतलाया कि उसका स्वाद चावल से मिलता हुआ था जिसमें घी और शक्कर पड़ी हुई हो। उसको खाने के बाद उन्हें आठ दिन तक भूख ही नहीं लगी।

आपने यह भी बतलाया कि पुराने समय में जब साधु सन्यासी तपस्या करते थे तो उन्हें एक स्थान पर बैठे-बैठे कई दिन, कई सप्ताह तथा कई मास हो जाते थे। उन्हें शौच आदि के लिये, भोजन, जलपान आदि के लिये अपना आसन छोड़ने की आवश्यकता नहीं होती थी।

उनका भोजन भी इसी प्रकार होता था कि थोड़ा सा एक बार खा लिया और आठ-दस दिन तक भूख, प्यास, शौच आदि से अवकाश मिल गया।

आज कल इसी प्रकार तपस्या के अभिप्राय से हिमालय के पहाड़ों में रहने वाले साधुओं को, कमंडल, लंगोटी व घण्टे में एक बार दोपहर को भोजन और जलाने के लिये लकड़ी ऋषिकेश में स्थित संस्थाओं द्वारा दी जाती है। वे क्या तपस्या करते हैं, यह तो वे ही जानें परन्तु उन्हें अपनी आवश्यकताओं के लिये इन संस्थाओं के आश्रित रहना पड़ता है। सम्भवतः जड़ी बूटियों के बारे में वे कुछ भी नहीं जानते और केवल पुराने ऋषि मुनियों की नकल करने अथवा दुनिया से ऊब कर भाग कर कहीं छिपने के साधन मात्र में अथवा किसी सिद्धि शक्ति पा जाने के लालच में और पता नहीं किन किन कारणों से अपना स्वाभाविक जीवन छोड़कर इस प्रकार का जीवन अपने लिये चुन लेते हैं। राम-भक्त महात्मा तुलसीदास जी ने, जो स्वयं भी सन्यासी हो गये थे, कदाचित इसी सन्दर्भ में कहा है-

नार मुई घर सम्पत्ति नासी, मूंड मुड़ाय भये सन्यासी

कैलूला

श्रीमान चच्चा जी महाराज का व्यवहारिक ज्ञान भी ऊँचे दरजे का था। एक बार आपने बतलाया कि दोपहर के भोजन के बाद थोड़ा लेटना चाहिये। पहले सीधे लेट कर आठ साँसे, फिर दाहिनी करवट सोलह साँसे और फिर बाईं करवट बत्तीस साँसे ले व अधिक समय और अवकाश हो तो अधिक भी लेटे। अन्यथा इतना लेटना ही पर्याप्त है।

स्वरोदय शास्त्र के अनुसार जब हमारा दाहिना सूर्य स्वर चलता है तो भोजन भली भांति पच जाता है। यह हमारा स्वयं का अनुभव है कि श्रीमान चच्चा जी महाराज के अनुसार यदि लेट कर साँसे गिनकर करवटें ली जावें तो यह सूर्य स्वर ऐसा स्थिर होता है कि आधा घण्टा से अधिक समय तक वही स्वर चलता रहता है और पाचन क्रिया ठीक हो जाती है।

हम भी दोपहर के भोजन के पश्चात् ऐसा अवश्य करते हैं और उस समय चच्चा जी महाराज की याद करते रहते हैं कि हम उनकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं। शारीरिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए यह अभ्यास हमें तो बहुत रुचिकर लगता है। इन्हीं दिनों हमारे पड़ोसी एक विद्वान पंडित जी, जिनकी आयु (1974 में) अस्सी वर्ष से भी अधिक थी, और अब इस संसार में नहीं हैं, हमें बतला रहें थे कि इस प्रकार आठ, सोलह और बत्तीस साँसे लेने का अभ्यास कर लेने से पत्थर खाओ तो वह भी पच जाता है। इसमें अतिशयोक्ति हो सकती है परन्तु श्रीमान चच्चा जी महाराज के बतलाये इस अभ्यास से शारीरिक स्वास्थ्य लाभ तो अवश्य होता है, यह हमारा अनुभव है।

गाँधी जी

श्रीमान चच्चा जी महाराज के पास श्रीमान महात्मा शिवनारायण दास जी, जो एक अध्यापक थे, आया करते थे। वे शुद्ध खादी पहनते तथा महात्मा गाँधी जी के निर्धारित नियमों का पालन करते थे। यहाँ तक कि अपने खाने का आटा भी

स्वयं पीस लेते थे। आपने इनको 'गाँधी जी' नाम से संबोधित करना आरम्भ किया, तब से ही सत्संगी भाई तथा अन्य सज्जन इन्हें इसी नाम से पुकारते थे। नये सत्संगियों के लिए तो हम कुछ कह नहीं सकते, परन्तु जितने पुराने सत्संगी हैं और जिनका सम्पर्क थोड़ा बहुत भी फतेहगढ़ अथवा कानपुर के सत्संग से रहा है, उन्हें इनसे भली-भांति परिचित होना चाहिए।

श्रीमान चच्चा जी महाराज ने स्वयं ही इन गांधी जी के जीवन की घटनाएं हमें बतलाई हैं। इनकी क्लास में यदि किसी विद्यार्थी को पाठ याद नहीं होता अथवा वह परीक्षा में पास न होता, तो वे अपने आपको दण्ड देते थे कि यह मेरी अयोग्यता (नालायकी) है। इनके पास होस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों ने हमें बतलाया कि जब ये विसवां में होस्टल वार्डन थे उन दिनों किसी भी मैस का कहार बीमार हो जाता तो आप उसके स्थान पर स्वयं रात्रि को ही बर्तन साफ करके रख आते थे जिससे विद्यार्थियों को असुविधा न हो तथा किसी को पता भी न चले कि यह कार्य कौन और कब कर गया।

सन् 1926 में जब हम कानपुर में सनातन धर्म कालेज में पढ़ते थे तो हर शनिवार को श्रीमान चच्चा जी महाराज की सेवा में जाते उनके पास दो रात्रि और इतवार के दिन रहते और सोमवार को प्रातः आकर कालेज कक्षा में उपस्थित हो जाते। एक शनिवार की संध्या को हम जब कालेज के सामने से निकल कर नगर में श्रीमान चच्चा जी महाराज के पास जाने लगे तो देखा कालेज के सेन्ट्रल हाल में बड़ी भीड़-भाड़ थी। उत्सुकता वश हम भी देखने के लिये रुक गए। ठीक से याद नहीं, सम्भवतः गीता पर किसी विद्वान का विशेष भाषण था। जब वहीं से निकले और नगर की ओर चले तो हमें एक साथी मिल गये। हम दोनों ने वह दो-ढाई मील की दूरी पैदल ही पूरी कर ली। मार्ग में गीता के विषय पर चर्चा चली। हमने उन्हें बतलाया कि यहां एक महात्मा हैं, हम उनके पास जाते हैं। वे हमें ध्यान करने का अभ्यास (Meditation) कराते हैं। उन सज्जन ने उत्सुकता प्रगट की कि 'हमें भी वहां ले चलिये।' हमने कहा 'अवश्य ले चलेंगे।' बात आई गई हुई। हम भी भूल गये। परन्तु उन्होंने अपने घर का पता अवश्य बतलाया था और उधर से हम कभी-कभी निकला भी करते तो उनकी याद आ जाती, बस फिर कुछ नहीं।

कई मास बाद, एक संध्या को हम अपने दो सहपाठियों के साथ वैसे ही भ्रमण को जा रहे थे कि वे ही सज्जन आधी धोती पहने आधी ओढ़े सड़क के किनारे एक छोटी सी बगीची में टहल रहे थे और नीचे दृष्टि किये विचारमग्न थे। हमारे सहपाठी ने इन्हें पहचाना और प्रणाम किया। वे उनके पास विसवां में पढ़ चुके थे। मास्टर साहब ने कुशलक्षेम पूछी, फिर मेरी और देखकर कहने लगे 'आपने हमें एक संत महात्मा के पास ले चलने को कहा था।' मैंने तुरन्त ही उत्तर दिया कि "कल इतवार है कल ही चलिये।" प्रोग्राम निश्चित हो गया।

दूसरे दिन मैं उन्हें उनके मकान से लेकर श्रीमान चच्चा जी महाराज के पास पहुंचा। उन दिनों कुछ सत्संगी भाई अधिक आते थे तो श्रीमान चच्चा जी महाराज ने पास ही एक छोटे से मकान का ऊपर का कोठा भी किराये पर ले रखा था। मास्टर साहब को वहाँ बैठा कर मैं सेवा में पहुंचा तो आप मेरी प्रतीक्षा में थे। पूछा "इतनी देर से आये ? हम तो इन्तजार सुबह से ही कर रहे थे।" निवेदन किया कि आज एक मास्टर साहब को आपकी सेवा में लेकर आने के कारण ही थोड़ी देर हो गई।

ये मास्टर साहब वही थे जिन्हें आप सब आज भी 'गांधी जी' के नाम से पुकारते और जानते हैं।

गांधी जी हमारे सत्संग के एक 'आदर्श पुरुष' है। इनमें नम्रता, अधीनता, सेवा भाव, भक्ति, विश्वास और दृढ़ता असाधारण है। जो कोई भी इनके सम्पर्क में आता है, इनके गुणों को देख कर मुग्ध हुये बिना नहीं रहता।

आपने श्रीमान चच्चा जी महाराज के वाक्यों को प्रतिदिन अपनी दैनिन्दनी (Diary) में लिखा। फिर सबके आग्रह पर उनका पुस्तक रूप में संग्रह किया। इसी पुस्तक को 'पीयूष वाणी' नाम से प्रकाशित किया जा चुका है। इसे पढ़ने पर हमें तो श्रीमान चच्चा जी महाराज की सब पुरानी बातें याद आ जाती हैं और उन के प्रेम में विभोर हो जाते है।

नोट : इनका नाम गाँधी जी श्रीमान चच्चा जी महाराज ने रख दिया। ये

शुद्ध खादी पहनते थे और महात्मा गाँधी जी के उसूलों पर चलते थे। कुछ वर्षों (लगभग सन् 1990) से अब वे इस संसार में नहीं है।

मुन्शी आत्माराम

सन् 1927 में हमारा सम्पर्क मुन्शी आत्माराम से हुआ। आप पेंशनर थे और आपके चार सुयोग्य पुत्र पढ़ लिख कर अच्छे-अच्छे पदों पर लग गये थे। आपका हमारा साथ कानपुर में नवाब गंज से श्रीमान चच्चा जी के स्थान तक तथा वहां से लौटते समय बहुधा हो जाया करता था और हम दोनों ही पैदल चलने के अभ्यस्त और रुचि रखने वाले थे। नवाबगंज में ही उनका निजी मकान था। जहां परिवार के अन्य सदस्य रहा करते थे। आप कई कई दिन तक श्रीमान चच्चा जी महाराज के पास ही रह जाते। वहीं भोजन करते, वहीं अपने सारे दैनिक कार्य करते तथा सोते।

जब इन्हें श्रीमान चच्चा जी महाराज के पास आते दो वर्ष से अधिक हो गये तो एक दिन उनके दो पुत्र श्रीमान चच्चा जी महाराज के पास आये और उनके चरण छू कर बैठ गये। श्रीमान चच्चा जी महाराज नवागन्तुक अथवा कभी-कभी आने वालों से पहले उनकी कुशल क्षेम पूछा करते थे। इन दोनों सज्जनों ने श्रीमान चच्चा जी महाराज की सेवा में निवेदन किया कि हम परिवार के सभी व्यक्ति आपको बहुत धन्यवाद देते हैं तथा आपका गुणगान करते हैं। हमारे लाला (पिता-मुन्शी आत्माराम) को इतना क्रोध था और अवकाश (Pension) प्राप्त करने के बाद भी रहा कि परिवार के हम सब सदस्य सदा ही दुखी रहते थे। भोजन की थाली आने में थोड़ी देर होने पर थाली ही उठा कर फेंक देते और फिर किसी प्रकार भी मनायें नहीं मानते और भोजन नहीं करते इत्यादि।

आपकी सेवा में रहने से इनके जीवन में ऐसा परिवर्तन आया है कि शाक तरकारी में यदि नमक भी भूल से डालना रह जावे तो ये वैसी ही खा लेते हैं। आपके सत्संग का जादू इतना प्रबल है कि हमारे लाला में इस आयु (लगभग 60 वर्ष) में यह आश्चर्यजनक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। आप कितने महान हैं। हमें भी

अपनी शरण में लेने की कृपा करें।

मुन्शी जी पर श्रीमान चच्चा जी महाराज की विशेष कृपा थी। मुन्शी जी को भी श्रीमान चच्चा जी महाराज से ऐसा प्रेम था कि हर समय उनके प्रेम में मगन और खोये हुए रहते थे। थोड़े ही समय में मुन्शी जी ने लय अवस्था प्राप्त की जबकि दूसरे आने वाले सत्संगी उनकी अवस्था देखकर यही सोचते कि इन्हीं पर इतनी विशेष कृपा क्यों है ?

श्रीमान चच्चा जी महाराज कहा करते थे कि जो स्वयं परिश्रम का कुछ कार्य शारीरिक अयोग्यताओं अथवा अन्य किन्हीं कारणों से करने योग्य नहीं है तथा अपनी इन अयोग्यताओं को जान कर समझ कर अपने आप को गुरु को समर्पण कर देते हैं, उनका सारा भार गुरु पर अपने आप आ जाता है। इस प्रकार उनका कार्य गुरु को करना पड़ता है और उन्हें कुछ करने को नहीं रह जाता।

फुर्सत

आपके पास कुछ ऐसे भी लोग आते थे जो कहते- "दुनियाँ के कामों (फर्ज़ दुनियावी) से फुर्सत नहीं मिलती ?" आपका उपदेश यह था कि "दुनिया के काम भी आवश्यक हैं। उन्हें अपना धर्म (फर्ज़) समझ कर करो, मगर उनमें लिप्त मत हो जाओ और न उन्हें बेगार समझो, निष्काम भाव से करो। काम बन जाने पर खुश होना और बिगड़ जाने पर दुखी होना सही नहीं हैं। यह समझो कि प्रभु कि यही इच्छा (मर्जी) है। दोनों में प्रसन्न रहो। जो ऐसा करता है वह अपना धर्म (फर्ज़) निभाता हैं।"

आपका एक यह भी कहना था की जो दुनियाँ के कामों में फँस कर ईश्वर को भूलता है, वह अपना फर्ज नहीं निभाता, और जो ईश्वर का नाम लेने में अपने दुनियावी फर्ज नहीं निभाता, वह उससे भी बुरा है। आप प्रभु की आज्ञा को इन थोड़े सरल शब्दों में कह देते थे, "दुनियाँ करो और मुझको चाहो।"

हमारे पास भी जब लोग आकर यह बतलाते है कि फुर्सत नहीं मिलती तो

हमें श्रीमान चच्चा जी महाराज की उपर्युक्त बातें याद आ जाती हैं। सच पूछो तो मनुष्य को कभी फुर्सत नहीं होती। वह सदा ही अपने आराम के साधन जुटाने में अपनी सारी शक्ति और समय लगाए रहता है। उसकी बहुत सी इच्छाओं की पूर्ति होती रहती है, फिर भी उतनी ही इच्छाएं बाकी रह जाती हैं, यहां तक कि अन्त समय में भी बहुत सी अपूर्ण इच्छाओं को लेकर चला जाता है। फिर इन अपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति के लिए उसे जन्म लेना पड़ता है और यह क्रम (चक्कर) अनिश्चित काल तक चलता है।

हमने एक दृष्टान्त श्रीमान जी के मुख-कमल से सुना था कि एक सज्जन के पास कहीं नारद मुनि अपने स्वभाव के अनुसार घूमते हुए पहुंच गये। वे सज्जन नारद जी से पूछने लगे "महाराज कहां से पधारना हुआ, कहाँ जा रहे हैं ?" नारद जी बोले संसार में घूमते फिरते आये हैं और भगवान नारायण के यहां जा रहे हैं। वे सज्जन बोले, "हम भी आपके साथ चलते मगर हमारा ये पुत्र अभी छोटा है। थोड़ा बड़ा हो जाए तब चलेंगे। कुछ वर्षों के बाद नारद जी फिर आये तो बोले "महाराज अभी ये लड़का पढ़ ही रहा है, इसका विवाह कर लें तब चलेंगे।" नारद जी कुछ वर्षों के बाद आये तो बोले, "नारद जी इसका विवाह तो हो गया, इसके एक बच्चा और हो जाय तब चलें।" जब महामुनि चौथी बार पहुँचे तो वे सज्जन दिखाई नहीं पड़े। पूछने पर उनके परिवार के सदस्यों ने बतलाया, महाराज उनका तो कुछ वर्ष हुए स्वर्गवास हो गया। नारद मुनि ने सोचा कि उसे इस घर बार से इतना मोह था कि उससे उसका छूटना कठिन था, अब वह किधर हैं ? चारों ओर निगाह दौड़ाई तो वह कुत्ते के रूप में दिख गए। महामुनि को देखकर कुत्ता पूंछ हिला कर दीनता का यह भाव दिखलाने लगा कि महाराज मुझे अब वैकुण्ठधाम ले चलो। नारद जी ने उत्तर दिया, तुम यहीं रहो, "जब समय था तब तो चले नहीं अब कुछ नहीं हो सकता।"

ईश्वर का नाम लेने में फुर्सत की क्या आवश्यकता है ? हमारी समझ में यह बात नहीं आती। हमें बेकार समय नष्ट करने, सोते रहने, ताश-शतरंज खेलने, चुगली तथा दूसरों की बुराई करने, टी०वी० सिनेमा देखने तथा तरह-तरह के व्यसनों के लिये तो समय मिल जाता है, परन्तु प्रभु की याद के लिये समय नहीं है।

हम सचमुच ही इसे आवश्यक नहीं समझते इसलिए कहते हैं, कि इस कार्य के लिए समय नहीं है। अन्यथा अन्य सब बातों के लिये समय ही समय है। यदि हमारे परिवार का कोई सदस्य बीमार हो जाता है तो हम कार्यों को छोड़कर उसी की सेवा में सुश्रूषा, दवा आदि में जुट जाते हैं, उन आवश्यक कार्यों को भी जिनमें फुर्सत न मिलने का हम बहाना करते थे, छोड़ देते हैं।

सोचिये और थोड़ी बुद्धि उसमें व्यय करके देखिए। ईश्वर का नाम लेने के लिए अलग से समय निकालने की आवश्यकता कहां ? आपकी अपनी विचारधारा को केवल एक मोड़ देना ही पर्याप्त है। आप अपने सारे कार्य पूर्ववत ही करते रह सकते हैं। यह मोड़ मिलने पर आप वे कार्य जिनमें आपका समय व्यर्थ जाता है, धीरे-धीरे अपने आप ही छूटते जावेंगे और आप सन्मार्ग पर गतिशील हो जावेंगे। इस मार्ग पर आकर तो देखें आपको कैसी-कैसी और कितनी सहायता मिलती है और कितनी शान्ति मिलती है ?

साहब बार एट लॉ

सन् 1940 से पहले की बात है कि जयपुर में हमारे एक सत्संगी भाई जो सुपरिन्टेण्डेन्ट पुलिस थे, किसी झूठे मुक़दमे में फंसाए गए और निलम्बित किए गये। वे एक छोटे जागीरदार भी थे और इसी कारण कुछ आपस के पारिवारिक झगड़ों के कारण बैर बढ़ना इसका मूल कारण था। जयपुर स्टेट में उनकी कौन सहायता करता क्योंकि मुकदमा स्टेट की ओर से था। वे एक बड़े नामी अंग्रेज बार एट लॉ को लखनऊ से लेने गए। उन्हें साथ लेकर कानपुर में गाड़ी बदलनी थी। पता चला कि गाड़ी ढाई-तीन घण्टा लेट है। सोचा गुरु महाराज के दर्शन कर आवें। उन अंग्रेज एडवोकेट से इजाजत लेने लगे तो वे सज्जन बोले कि हम अकेले यहां स्टेशन पर क्या करेंगे यदि असुविधा न हो तो हम भी चलें। ये सब श्रीमान चच्चा जी महाराज की सेवा में पहुँचे। अंग्रेज एडवोकेट के लिए चच्चा जी ने एक कुर्सी डलवा दी। ये लोग फ़र्श पर बैठे। एक घण्टा बैठे। बात भी करते रहे और जैसे कि सदा ही होता था, ध्यान भी चलता रहा। उन एडवोकेट से कौन बात करता ? श्रीमान चच्चा जी महाराज ने आदर भाव से उनका परिचय तथा कुशल क्षेम पूछ

लिया। वे केवल यह सब देखते ही रहे। जब वहां से स्टेशन को लौटे तो उन अंग्रेज सज्जन ने कहा "आप मुझे जयपुर ले जाकर क्यों धन खर्च करते है आप तो मुकदमा जीत गये।" चच्चा जी महाराज को उन्होंने That Grand Old Man कह कर सम्बोधित किया और कहा, "उनमें बड़ी शक्ति है और वे आप पर इतने मेहरबान हैं। आप मुकदमा जीत गये।" हमें श्रीमान सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब ने बतलाया। कुछ समय बाद स्टेट ने पूरी इज्जत के साथ उन्हें बहाल किया। सुपरिन्टेण्डेन्ट का नाम श्री मूल सिंह था।

उन अंग्रेज सज्जन ने श्रीमान चच्चा जी महाराज में क्या देखा, न तो वे कह सके न लोग ही कुछ समझ सके। उन सज्जन ने इतना अवश्य कहा था कि उनके पास मैं फिर आऊँगा। पर फिर वे नहीं आ पाये, उनकी आयु ने साथ नहीं दिया।

कोरापन

हमारे गुरुजनों में एक विशेषता यह थी कि वे गूढ़ बातों को इतनी सरल भाषा में समझा देते थे कि हम साधारण बुद्धि के लोग भी सरलता से समझ लेते थे। आप के मुख कमल से हमने सुना कि जब हमारे मन में कोई भी विचार न आ रहा हो वह स्थिति ऊंची है। उस स्थिति को वे 'कोरापन' कहते थे। कोरा का मतलब खाली, जिसमें कुछ भी न हो। जब मन में कोई भी विचार न हो तो उस समय हमारा मन निर्मल होता है। ऐसी स्थिति में 'दिव्य प्रकाश' की झलक गुरुदेव की कृपा से मिल जाती है। परन्तु क्या यह कोरापन की स्थिति सरल है ? बड़ी कठिनाई से, निरन्तर अभ्यास करते रहने से, विशेष गुरु कृपा से, यह स्थिति प्राप्त होती है। कहीं हमने पढ़ा था :-

दिल का हुजरा साफ कर, जानाँ के आने के लिये।
सब कदूरत दूर कर, उनको बिठाने के लिये।

जाग्रत समाधि भी यही है हमारे अभ्यासी इसे समझ लें।

रोते आये हँसते जाओ

आपका कहना था कि जब मनुष्य संसार में जन्म लेता है तो पहले रोता है, मगर उसके जन्म से परिवार के सदस्य तथा मित्रगण प्रसन्न होते हैं, परन्तु जब वह जाता है तो वे ही परिवार के लोग तथा मित्रगण रोते हैं। ऐसे समय में आप भी यदि रोते हुए ही गये तो इसमें क्या आनन्द है ? आपको चाहिए कि भले ही सब रोएँ परन्तु आप हँसते हुए जाएँ।

आप हँसते हुए कैसे जा सकते हैं ? यदि आपको माया मोह ने पकड़ रखा है या सही यह है कि आपने मोह वश धन परिवार को पकड़ रखा है, तो इस सब को छोड़कर जाने में आपको कष्ट होना स्वाभाविक ही नहीं, आवश्यक है। आप इससे बच नहीं सकते। आप अवश्य ही रोते हुए जावेंगे। परन्तु यदि ऐसा रास्ता और गुरुदेव का सहारा मिल गया हो तो वे अवश्य ही आपको इस माया मोह के बन्धन से छुटकारा दिला देंगे और जिसे छोड़ते आपको कष्ट होता, उस सब को आप हँसते-हँसते छोड़ जावेंगे। गुरुदेव की कृपा से आपकी अवश्य ही यह भावना बनेगी कि यह सब न तो हमारा कभी था, न है। यह सारी प्रभु की माया है। जो हमारा नहीं है, उसे छोड़ने में क्या दुख ? इतना ही नहीं गुरुदेव तो मृत्यु के बाद भी हमें पुनर्जन्म के कष्टों से बचाकर उन लोकों तक तो अवश्य ही पहुंचा देते हैं जहां से फिर वापसी नहीं है। इसी को मोक्ष कहते हैं। विश्वास के साथ उनकी सेवा तथा याद करने वालों को न जाने कितने-कितने लोकों से सहज ही में वे पार करा देते हैं तथा परमानंद के पद तक पहुँचा देते हैं।

सलामत रवी तथा दान

श्रीमान चच्चा जी महाराज हमें सदा यही उपदेश दिया करते थे कि दुनियाँ में रहने का अपना ऐसा ही तरीका रखो कि बिल्कुल साधारण हो, न इतना ऊंचा रहन-सहन हो कि आपके पास लोग आते हुए हिचकिचायें और डरें, और न ऐसा नीचा हो कि लोग आपसे घृणा करने लगें या आपकी निर्बलता का लाभ उठाते रहें। आप कई बार यह वाक्य सुनाया करते :-

न कड़ुवा बन जो चक्खे सोई थूके। न मीठा बन कि चट कर जाँय भूखे ॥

आप बतलाया करते थे कि हमारा तरीका सलामतरवी का है। इसका मतलब है कि सादा रहो, नुमाइश (दिखावा) से सदा दूर रहो और हर हालत में प्रभु का आभार मानो (शुक्र करो)। आप अपव्यय (फिजूल खर्ची) को कभी पसन्द नहीं करते थे। मितव्ययता (किफायत) से रहने और इससे जो बचत हो उसे नेक काम में लगाने तथा पहले अपने उन रिश्तेदारों तथा अन्यों की सहायता में लगाने को कहते थे, जिन्हें आपकी सहायता की आवश्यकता तो है पर आपसे माँग भी नहीं सकते। मांगने वाले तो इस दर से नहीं मिला तो दूसरे-तीसरे दर से मांग कर अपनी पूर्ति कर लेंगे परन्तु जो मांग नहीं सकते हैं, उन्हें कौन देने आवेगा ? ऐसों की सहायता करना हमारा धर्म है, और इससे प्रभु प्रसन्न होते है। यह सब श्रीमान चच्चा जी महाराज के वचन हैं, जो हमने कई बार सुने हैं ऊपर का वाक्य (न कड़ुवा) सदा ही हमारे ध्यान में रहता और अपने गुरुदेव की तथा आज्ञापालन की याद दिलाता है।

लय

एक बार श्रीमान चच्चा जी महाराज ने बतलाया कि अभ्यासियों के लिए ध्यान का यह तरीका बहुत अच्छा है कि पहले अपने हृदय में गुरु को बिठावें। जिससे अन्दर भी और बाहर भी गुरु दिखलाई पड़े और अपने स्वयं के अस्तित्व (वजूद) को उसमें गुम कर दें। यह लय अवस्था कहलाती है। इसी को गुरु में लय होना (फ़नाफ़िलशेख़) कहते हैं। हम ध्यान को इतना पक्का करें कि हमें अपनी सत्ता (मौजूदगी) का आभास ही न रहे। इसमें यत्न करते रहने से शीघ्र ही गुरु कृपा हमें मिलने लगती है और धीरे धीरे लय की अवस्था परिपक्व हो जाती है।

केवल हमने यह अपनी बात लिखी है, अर्थात् जो गुरुदेव ने बतलाया। अभ्यासियों को जैसा उनके गुरु बतलावें, वैसा ही करना चाहिए, हमारे उक्त कथन के अनुसार ही कोई भाई इसे करना चाहे, तो हम तो उन्हें यही सलाह देंगे कि अपने गुरुदेव से अथवा जो उनके स्थान पर हों उनसे पूछ कर ही करें। इसका उल्लेख यहाँ इसलिए किया है कि मेरी “यादों” में यह भी एक 'याद' है जो मुझे साक्षात गुरुदेव

तक पहुँचा कर उनके प्रेम में सराबोर कर देती है।

बत्तीस कौर

एक बार आपने बतलाया कि भोजन करते समय हमें गिन कर बत्तीस ग्रास (कौर) खाने चाहिए। इससे अधिक नहीं तथा हर ग्रास को कम से कम बत्तीस बार चबाना चाहिए, तब निगलना चाहिए। सत्संग में आने वालों को यह तो जानना चाहिए कि अपना भोजन पहले गुरु को अपर्ण करके गुरु के ध्यान में ही करें। पेट भरना तो अवश्य चाहिए परन्तु थोड़ा भी अधिक न हो जाय इसका सदा ध्यान रखना चाहिए। थोड़ा कम रह जाय तो इसमें अच्छाई है बुराई नहीं।

अधिक भोजन करने वालों को आपने भी देखा होगा। वे कोई असाधारण रूप से स्वस्थ बलवान या लम्बे चौड़े नहीं होते। हमारी अपनी सम्मति यह है कि आवश्यकता से अधिक भोजन करना, उस अधिक खाये हुए भोजन को बरबाद करना है। अन्यथा वह भाग किसी अन्य के काम आ सकता था। साथ ही आप अपने स्वास्थ्य को भी बिगाड़ते हैं। जिस मशीन से उसकी क्षमता से अधिक काम लिया जाता है वह जल्दी खराब हो जाती है। फिर शरीर की इस मशीन का कोई पुरज़ा बदला भी नहीं जा सकता। अतः हमें भोजन में सन्तुलन रखने का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

भोजन जीवन के लिये

आपने एक दिन बतलाया कि यदि भोजन स्वादिष्ट बना हो तो हम सामान्य से अधिक कर लेते हैं। कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो यदि उनकी इच्छा के अनुसार भोजन न बना हो, तो भोजन करते ही नहीं अथवा थोड़ा सा करते हैं। ये दोनों ही अवस्थाएं सही नहीं हैं। भोजन स्वाद के लिए नहीं वरन् अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये होना चाहिये। जो केवल स्वाद के लिये भोजन करता है वह आगे चलकर दुखी होता है। भोजन जीवन के लिये है और जीवन भगवान की याद करने के लिए है। जीते रहने के लिये खाओ-खाने के लिये

जीना बुरा है।

चना, गेहूं और जौ

श्रीमान चच्चा जी महाराज ने एक बार बतलाया कि प्रातः काल की पूजा के बाद चना खाना चाहिये। सुविधानुसार भुने हुए चने एक बोतल में भरकर रख लें और पूजा के बाद इच्छानुसार थोड़ा चना खा कर जल पिएं। हमें याद है कि कानपुर में पूजा के बाद कढ़ाई में पके नमकीन चने कटोरियों में थोड़े जलपान के लिये प्रातः सब भाइयों को दिये जाते थे।

आप यह भी बतलाया करते थे कि पुरुषों का भोजन चना, स्त्रियों का गेहूँ और संतों (फ़क़ीरों) का भोजन जौ है। संत (फ़क़ीर) ऊपर से रूखे सूखे दिखते हैं और उनके भीतर भगवान का रूप झलकता रहता है जैसे जौ के ऊपर रूखा-सूखा छिलका और अन्दर उसका हीर रहता है।

चिड़ियाँ

पास में बैठे एक पंडित जी से, जो आपके प्रियजनों में से थे, आपने एक बार पूछा, "पंडित जी ये चिड़ियाँ क्या कहती हैं ?" पंडित जी क्या उत्तर देते, बोले "चच्चा हम तो इनकी बोली समझते नहीं हैं, आप ही कृपया बतलायें।" आपने तुरन्त ही उत्तर दिया, "ये ईश्वर का नाम लेती हैं।"

श्रीमान लाला जी महाराज के बराबर बैठना श्रीमान छोटे चच्चा जी जयपुर वालों के शिष्यों में भाई साहब पंडित हीरालाल जी-जो रावटी (रतलाम) में रहते थे-एक उच्च कोटि के सन्त हुए हैं। हमारे परम पूज्य श्रीमान लाला जी महाराज तथा कानपुर वाले श्रीमान चच्चा जी महाराज से भी इनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। हमें एक बार इन भाई साहब ने श्रीमान चच्चा जी महाराज की एक घटना सुनाई जो इस प्रकार है।

कुछ सत्संगी भ्राताओं ने श्रीमान लाला जी महाराज से आग्रह किया कि

आप और चच्चा जी की फोटो साथ-साथ हो जाय। श्रीमान लाला जी महाराज ने "हाँ" कर दिया।

जब फोटो की तैयारी होने लगी तो इन्होंने (भाई साहब हीरा लाल जी ने) चच्चा जी महाराज से निवेदन किया कि आपकी और श्रीमान लाला जी महाराज की फोटो साथ-साथ बैठे खींचने की तैयारी हो रही है। श्रीमान चच्चा जी महाराज ने तुरन्त ही उत्तर दिया "क्या ? हम लाला जी महाराज के बराबर बैठेंगे ? हम हरगिज ऐसा नहीं करेंगे।"

श्रीमान चच्चा जी महाराज श्रीमान लालाजी महाराज को इतना बड़ा मानते तथा आदर (अदब) करते थे कि अपने आपको उनके बराबर बैठने के कदापि योग्य नहीं समझते थे।

परन्तु फोटो की तैयारी चल ही रही थी। जब सब तैयारी हो चुकी और श्रीमान लाला जी महाराज आकर विराज गये- उन्होंने आवाज दी "नन्हे ?"

उत्तर में "हाजिर आया" कहते हुए आप वहाँ पहुँचे।

"यहाँ बैठो" श्रीमान लाला जी महाराज ने अपने पास बैठने को कहा।

चच्चा जी महाराज चुपचाप बैठ गये और फोटो बन गया। आज भी वह फोटो कई जगह छप चुकी है। हम जब भी उस फोटो को देखते हैं तो हमें यह घटना याद आ जाती है विशेषकर उस आदर भाव की जो श्रीमान चच्चा जी महाराज के हृदय में श्रीमान लाला जी महाराज के लिए था।

कम खुरद अज़ीज़ मन

श्रीमान चच्चा जी महाराज की विनोद प्रियता का एक उदाहरण प्रस्तुत है। आप का भोजन प्रायः बाहर से आये सभी आगन्तुकों के भोजन कर लेने के बाद होता था। एक संध्या को ध्यानादि के सत्संग के बाद सभी आगन्तुक भ्राताओं को

भोजन के लिये बुलाया गया। मैं भी उन्हीं में था परन्तु मैं उस समय किसी कारण से भोजन करना नहीं चाहता था अतः मैंने भोजन के लिये मना कर दिया आपने तुरन्त ही फरमाया "कम खुरद अज़ीज़ मन, न खुरद जाने मन।" यह वाक्य परशियन (Persian) भाषा का है- जिसका अर्थ है "कम खाने वाला मुझे प्रिय है- न खाने वाला मुझे जान से भी अधिक प्रिय है।" मैं तथा अन्य भ्रातागण, जो वहां उपस्थित थे, यह सुन कर बहुत हँसे अब भी जब भोजन के लिये कुछ विशेष व्यक्तियों का साथ होता है तो श्रीमान चच्चा जी महाराज के ये वाक्य हमें याद आ जाते हैं।

भाई रोया करो

श्रीमान लाला जी महाराज के समय की घटना हैं। एक बार फतेहगढ़ में श्रीमान चच्चा जी महाराज कमरे में विराजे थे। भाई लोग उन्हें घेरे उनकी बातों पर मुग्ध मस्ती में झूम रहे थे। एक भाई ने श्रीमान चच्चा जी से प्रश्न पूछ लिया, "चच्चा, पूजा में तो जी बिल्कुल नहीं लगता, कुछ ऐसा गुर बतलाइये जिससे मन लगने लगे।" चच्चा जी महाराज ने तुरन्त ही उत्तर दिया, "यह तो बहुत सरल है- भाई रोया करो।"

भाई को गुर मिल गया। रोने का अभ्यास आरम्भ हो गया। एक दिन वे मकान के ऊपर के कमरे में बन्द होकर रो रहे थे कि उनकी आवाज जोर से निकलने लगी और घर वालों का ध्यान उधर आकृष्ट हो गया। कमरे के किवाड़ भड़भड़ाये गये तब कहीं देर से उन्होंने किवाड़ खोले।

उनके इस व्यवहार की शिकायत श्रीमान लाला जी महाराज के पास पहुंची। उनसे बुलाकर पूछा गया तो उन्होंने श्रीमान चच्चा जी महाराज के बतलाये गुर का भेद खोल दिया। श्रीमान लाला जी महाराज को इस बात पर कुछ हंसी आ गई और फ़रमाने लगे, "नन्हें को ऐसी ही बातें सूझा करती हैं ?" उन रोने वाले भाई पर उस दिन से कुछ विशेष कृपा भी हो गई।

श्रीमान चच्चा जी महाराज को उन भाई ने स्वयँ ही जाकर यह घटना सुनाई और कहने लगे, "चच्चा आपने ऐसी तरकीब बतलाई कि हमारा काम बन

गया। परन्तु आपको थोड़ी डांट पड़ गई।"

श्रीमान चच्चा जी महाराज फ़रमाने लगे-

"कबीर हँसना दूर कर - रोने से कर प्रीत ।
बिन रोये कैसे मिलें, प्रेम पियारा मीत ॥

हँस हँस कंत न पाइयाँ, जिन्ह पाया तिन्ह रोय ।
हँसी हँसी जो पिउ मिले तो कौन दुहागिन होय ॥

भाई तुम्हारा काम तो हो गया हमें डांट पड़ी उसकी चिन्ता न करो।"

रोना और गिड़गिड़ाना, दीनता आधीनता की निशानी है । चच्चा जी महाराज के अनुसार ये दोनों ही बातें भगवान को प्रिय हैं और हमें भगवान के निकट ले जाने वाली हैं।

कारूरा

राजपूताना, जिसको अब हम 'राजस्थान' कहते हैं, में एक मुस्लिम स्टेट 'टौंक' में उन दिनों में पिता जी नवाब साहब के बख्शी (सेक्रेट्री) थे। मैंने हाई स्कूल तक वहीं पढ़ाई भी की थी। पुरानी बात है। सन् 1920 के पहले की होगी। उन दिनों 'टौंक' में एक हकीम ज़हीरूद्दीन साहब, जो अरबी फारसी के अच्छे विद्वान थे 'शरीयत' नाम की मुस्लिम अदालत के नाज़िम (मजिस्ट्रेट) थे। हकीम होने के नाते रोज प्रातः उनका मत्तब (इलाज का आयोजन) भी चलता था । हकीम लोग उन दिनों नाड़ी आदि की परख करके नुस्खा लिख देते थे और रोगी बाजार में उत्तम से उत्तम दवा पैसे देकर ले लेते थे। हकीम साहब निःशुल्क ही सेवा करते थे।

हकीम साहब अपनी परख में बहुत चतुर थे अतः उनसे रोगियों को शीघ्र लाभ होता था। उनका नाम सुन कर दूर-दूर से रोगी आते और लाभान्वित होते थे। इसी क्रम में एक रोगी बहुत दूर मध्य प्रदेश से अपनी मां और पत्नी के साथ इलाज

के लिये हकीम साहब के पास पहुँचा। हकीम साहब ने कहा "कल सुबह इन दोनों का कारूरा लेकर आना।" रोगी नहीं समझा कि 'कारूरा' क्या होता है ? लोगों ने बतलाया कि 'मूत्र' को कारूरा कहते हैं। अतः वह बाजार से एक बोतल लाया और दूसरे दिन 'कारूरा' लेकर प्रातः मत़ब में पहुँच गया।

हकीम साहब अपनी कटु वाणी के लिये प्रसिद्ध थे। गालियाँ देने की उन्हें अच्छी खासी आदत थी। कभी क्रोध आ जाता तब तो वे अपने आपको संभाल भी नहीं पाते थे। परन्तु जनता उनके गुण पर ऐसी रीझी हुई थी कि सब सहन कर जाती थी।

तो जैसे ही इस विशेष रोगी का नम्बर आया वह बोतल लेकर सामने आया और बात इस प्रकार हुई :-

"कारूरा लाया ?"

"हां हुजूर" और उसने वह बोतल सामने कर दी। उसमें दो स्थान पर डोरे बंधे थे।

"अबे इसमें ये डोरे क्यों बंधे हैं।"

"हुजूर ! इसमें (उंगली से बताकर) यहाँ तक तो मेरी माँ का कारूरा है और यहां तक मेरी बीवी का . . . . . ."

इतना सुनने पर तो हकीम साहब का पारा चढ़ गया और क्रोध में चारपाई से उठ खड़े हुए और जूते पहन कर रोगी की ओर दौड़े। गालियों का क्रम तो पहले ही आरम्भ हो चुका था।

लोगों ने देखा कि अब इसकी खैर नहीं है, कहा अरे भाग, अरे भाग ! और वह रोगी कारूरा की बोतल, जूते आदि छोड़कर भागा। हक़ीम साहब द्वार तक तो उसके पीछे दौड़े, फिर वापिस आ गये गालियों का क्रम जारी रखते हुए बोले "हरामजादे मुझसे भी मजाक करने आते हैं।" बड़ी कठिनाई से थोड़ी देर में उनका

क्रोध शान्त हुआ तब मतब का काम आगे चला।

हमारे श्रीमान चच्चा जी महाराज को यह घटना हमने सुनाई तो आप और श्रोतागण बहुत हँसे। कभी-कभी अनुरोध भी करते थे कि तुम्हारी कारूरा की कहानी बहुत अच्छी थी। आजकल भी डाक्टर लोग मूत्र-परीक्षण के लिये मँगा लेते हैं। ऐसे समय में हमें श्रीमान चच्चा जी महाराज का वही हंसी के माहौल वाला दरबार याद आ जाता है और कुछ क्षण के लिए निहाल हो जाते हैं।

यादें

संस्मरण – (भाग 3)

श्रीमान ज़नाब परम सन्त हाजी मौलाना अब्दुल ग़नी ख़ाँ साहिब

साकिन कस्बा भोगाँव, जिला मैनपुरी, उत्तर प्रदेश

परिचय

आपका जन्म कायमगंज जिला फर्रूखाबाद में एक संभ्रान्त अफगान अफ्रीदी परिवार में ता॰ 7 फरवरी सन् 1867 ई॰ को हुआ। आपके पूज्य पिताजी की आयु आपके जन्म के समय 50 वर्ष से अधिक हो चुकी थी अतः आपका लाड़ प्यार परिवार में कुछ अधिक ही था। आप स्वभाव से ही चंचल प्रकृति एवं कुशाग्र बुद्धि के थे। आपने थोड़ी आयु में ही अरबी, फारसी, और उर्दू भाषाओं की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। बड़े होने पर आपने अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। उन दिनों उत्तर प्रदेश के सारे कार्यालयों में तथा न्यायालयों में सारा कार्य उर्दू भाषा में ही होता था। उर्दू मिडिल स्कूल तो ग्राम-ग्राम में थे परन्तु अँग्रेज़ी भाषा के स्कूल बड़े नगरों तक ही सीमित थे। इन्हीं सरकारी स्कूलों में आपने अध्यापन का कार्य किया और 45 वर्ष की सेवा में आप डिप्टी इन्सपेक्टर के पद तक पहुँचे। उन दिनों पेंशन देने की इन स्कूलों में व्यवस्था नहीं थी। अतः आपको भी शेष आयु में पेन्शन नहीं मिली।

अपने बाल्यकाल ही में आप हमारे दादा गुरु बड़े हुजूर महाराज परम सन्त जनाब हजरत मौलाना अहमद अली ख़ाँ साहब की सेवा में पहुंच गये। यह इस प्रकार हुआ कि एक दिन आप कायमगंज में अपने मकान के बाहर अपने पिता के साथ चबूतरे पर बैठे थे। उस समय बड़े हुजूर महाराज, जिन्हें खलीफा साहब भी कहा जाता था, उधर से निकले। आपको देखकर बड़े हुजूर महाराज ने आपके पिता से फरमाया कि आप इस बच्चे को मुझे दे दीजिए। आपके पिताजी ने तुरन्त

ज़नाब हज़रत शाह अब्दुल ग़नी खाँ साहब (रहम०)

आपकी मजार भोगांव में है

स्वीकार कर लिया और आपको बड़े हुजूर महाराज अपने साथ घर ले आये और अहलिया (धर्मपत्नी) से फरमाया कि लो मैं तुम्हारा अब्दुल्ला ले आया। वे खुश हो गई और उन्हें पुत्र की भाँति सारी सुख सुविधायें प्रदान की। कुछ समय पहले ही उनके पुत्र अब्दुल्ला का देहांत हो गया था। जिससे अब्दुल्ला की माता दुखी रहती थी।

हमारे बड़े हुजूर महाराज अरबी फारसी के एक जाने-माने विद्वान थे। उनके पास इन विद्याओं के साथ-साथ आपको उसी समय में आध्यात्म विद्या की शिक्षा भी मिलने लगी। और इन सभी में आपने पूर्ण प्रतिभा प्राप्त की। जब आप उर्दू मिडिल की परीक्षा में जाने लगे तो बड़े हुजूर महाराज की सेवा में निवेदन किया कि मैंने कुछ ठीक से पढ़ा नहीं है- उत्तर मिला कि "मैंने तो पढ़ा है चिन्ता क्यों करते हो।" आपको उस परीक्षा में उत्तर प्रदेश भर के विद्यार्थियों में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। इसी प्रकार आगे चलकर जब आप नारमल (जिसे अब टीचर्स ट्रेनिंग कहते है) परीक्षा के लिये गये उसमें भी आपको ऊंचा फर्स्ट डिवीजन मिला। आपके साथ ही हमारे हुजूर महाराज (श्रीमान परम संत जनाब क़िब्ला मौलवी फ़ज़ल अहमद ख़ाँ साहब) भी नारमल परीक्षा में बैठे, वे भी पास हुए। बड़े हुजूर महाराज ने दोनों के पास होने की भविष्यवाणी (पेशीनगोई) की थी।

आपके जन्म के पहले ही एक नुजूमी (ज्योतिषी) ने आपका तमाम हुलिया (शरीर और मुख मंडल की बनावट) बतला दिया था और यह भी कहा था कि आप साहिबे कमाल (असाधारण प्रतिभा वाले) होंगे।

आपका किसी भी बात को समझाने का ढंग बहुत अच्छा था। जिन्नात के बाबत आप बतलाते थे उनमें हवा और आग का अंश अधिक होता है। और मनुष्य में मिट्टी और पानी का। जिन्नात भी खुदा के बन्दे हैं और रूहानी तालीम के लिए बुजुर्गों की सोहबत (संतों के सत्संग) में आते हैं।

आपका प्रियजन यदि कोई इच्छा मन में लेकर आपके पास जाता तो आप फ़रमाते इंशाअल्लाह जो चाहते हो वही होगा और वैसा ही हो जाता।

बड़े हुजूर महाराज के समय में आप छोटे थे। अतः उनके जीवन काल में आपकी आध्यात्म शिक्षा पूरी न हो सकी। अतः उन्होंने उस पूर्ति का भार श्रीमान हुजूर महाराज पर छोड़ दिया था। अपने गुरुदेव के प्रिय शिष्य होने के नाते हुजूर महाराज आपका विशेष ध्यान रखते और इन्हें बहुत आदर देते थे। यहां तक कि ग़नी-अद्दा कह कर संबोधित करते थे। हुजूर महाराज के द्वारा आपकी आध्यात्म शिक्षा की पूर्ति हुई और परम संत सद्गुरु की पदवी आपको उन्हीं के द्वारा दी गई।

आपके आत्मविश्वास तथा हिम्मत का यह हाल था कि किसी भी कार्य को आप कठिन नहीं समझते थे। अपने गुरुदेव में आपका विश्वास इतना दृढ़ तथा अडिग थी कि आप जिस कार्य को जैसा चाहते वैसा ही होता। भक्त का भगवान के यहां ऐसा ही आदर होता है।

आपका तेज, जिसे उर्दू भाषा में जलाल कहते हैं, अद्भुत था। किसी की हिम्मत न होती कि आपके सम्मुख किसी प्रकार की गुस्ताखी कर सके। जो भी आपके सम्मुख जाता उस तेज से प्रभावित हुए बिना न रहता। आपकी सुन्दर सुडौल बड़ी-बड़ी आँखें जिधर पड़ती, प्रकाश ही प्रकाश बिखेर देतीं। कभी किसी को प्यार की दृष्टि से देख लिया तो वह निहाल हो गया।

संत क्रोध नहीं करते। आपको क्रोध करते हमने कभी नहीं देखा। किसी को आँख से आँख मिलाने की हिम्मत नहीं होती थी कभी देखते तो सम्भव है हमारी सहन-शक्ति से बाहर होता। एक बार श्रीमान चच्चा जी महाराज के विषय में कुछ पुराने सत्संगियों द्वारा अनुचित शब्दों का प्रयोग किए जाने की सूचना मिलने पर आपको जलाल आ गया। फ़रमाने लगे "इन साहब की यह मजाल कि आप से गुस्ताखी करें ? इंशा-अल्लाह इन्हें दुनिया और दीन किसी काम का नहीं रखूंगा।" श्रीमान चच्चा जी महाराज जानते थे कि आपकी अप्रसन्नता का फल क्या हो सकता है। बड़ी अनुनय विनय की और कहा "जिन्हें हुजूर ने ही सब कुछ बख्शा है उनसे वापिस लेना मुनासिब न होगा। बच्चे गलतियां करते ही हैं। आप जैसे अभी तक उन्हें माफ करते आये हैं माफ फ़रमायें, उनकी तरफ से मैं माफी का ख्वास्तगार हूँ।" आपकी अप्रसन्नता श्रीमान चच्चा जी महाराज के अनुनय विनय

से शांत हो गयी। फ़रमाने लगे, "मुंशी जी आपके रूहानी ऊंचे दर्ज़े को देखते हुए आपको यही ज़ेब देता है।

हमने देखा है कि गुरु घराने में, अर्थात हमारे श्रीमान चच्चा जी महाराज (अजमेर-जयपुर वाले) द्वारा आपको कितना आदर दिया जाता था। हमने इन बुजुर्गों को आपके सामने हाथ बांधे खड़े देखा है। अगली पीढ़ी में जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते गए श्रीमान लाला जी महाराज ने एक-एक करके सब को आपके ही चरणों में समर्पित किया इस प्रकार इन सब भ्राताओं, सर्व श्रीमान महात्मा बृज मोहन लाल साहब, श्रीमान महात्मा जगमोहन नारायण साहब, श्रीमान महात्मा राधामोहन लाल साहब, श्रीमान महात्मा ज्योतिन्द्र मोहन लाल साहब तथा महात्मा श्रीमान नरेन्द्र मोहन साहब के आप ही दीक्षा गुरु थे।

आपके सुपुत्र श्रीमान महात्मा अब्दुल गफ्फार ख़ाँ साहब भी उच्च कोटि के सन्त थे। आपके पौत्र (पोते) महात्मा अब्दुल ज़लील ख़ाँ साहब आपके साथ ही रहते और जहाँ भी जाते आपके साथ ही जाते। आपके साथ रहने के समय में ही आपने इनमें आध्यात्म का सारा ज्ञान भर दिया। परंपरा के अनुसार इन्हें भी भाई साहब श्रीमान राधामोहन लाल साहब द्वारा पूर्ण होने तथा संत सद्गुरु की पदवी पाने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

अपने शिष्यों तथा सारे सत्संग परिवार के महानुभावों को सन् 1952 तक आप आध्यात्म से ओत-प्रोत करते रहे। अन्त में ता॰ 30-3-52 को आप अपने प्रीतम में समा गए। आपकी समाधि (मजार शरीफ़) ग्राम भोगाँव के बाहर बगीचे में एकान्त तथा सुन्दर स्थान पर बनी हुई है। समाधि स्थल में तीनों पवित्र महात्माओं-श्रीमान जी, सुपुत्र श्रीमान महात्मा अब्दुल गफ्फार ख़ाँ साहब तथा पौत्र श्रीमान महात्मा अब्दुल जलील ख़ाँ साहब की समाधियों एक ही छत्र (गुम्बद) के नीचे बड़े ही सुन्दर रूप में बनाई गई हैं।

काफी पहले हमें भी इस समाधि स्थल के दर्शनों का सुअवसर प्राप्त हुआ। जाकर बैठते ही अभ्यास की धारा ऐसी प्रवाहित हुई कि थोड़ी देर में सराबोर हो गए, तन बदन का होश नहीं रहा। अब हम हर वर्ष समाधि पर जाते हैं और उनकी कृपा

धार से लाभान्वित होते हैं।

इन्हीं परम संत के संबंध में कुछ संस्मरण हम पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रथम दर्शन

आपके दर्शन मुझे सबसे पहले कानपुर में सन 1926 में हुए। आपके नाटे कद, छरहरा बदन, गोरे रंग पर बड़ी-बड़ी आँखें और सफेद दाढ़ी देखकर मुझे आपके प्रति बड़ा आकर्षण हुआ। आपको भी मेरी ओर ऐसा प्रेम हुआ कि जब कभी आपके दर्शन को जाता तो चिपटा लेते और मैं ऐसा गदगद हो जाता कि मुख से शब्द नहीं निकल पाते। आपका भी (आध्यात्मिक) शिक्षा का वही तरीका रहा कि बातों ही बातों में यदि किसी की आँख बंद हुई हो तो गहरा गोता लग गया। आपके जीवन की कुछ घटनायें जो आप ही के मुख कमल से सुनी हैं, यहां आपके सम्मुख रखूंगा। इसके अतिरिक्त कई अन्य बातें भी आपको बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है।

हृदय चक्र

सन् 1927 के ईस्टर भंडारे में फतेहगढ़ आप भी पधारे थे। वैसे आप फतेहगढ़ के हर भंडारे में पधारते थे। मेरा अधिकतर समय आपकी सेवा में व्यतीत होता। जब आप वहां से वापिस जा रहे थे तो विदा करने के लिए श्रीमान लाला जी, श्रीमान चच्चा जी और बहुत से अपने तथा सत्संग परिवार के सदस्य उपस्थित थे। जब मैंने आपको प्रणाम किया तो पूछा "तुम बेटे कब और किधर से जा रहे हो ?" मुझे जयपुर के पास टोंक जाना था। फिर आज्ञा की कि एक दिन मेरे पास भोगाँव में ठहर कर, फिर आगे जाओ। दूसरे दिन जब मैं भोगाँव स्टेशन पर उतरा तो आप ट्रेन पर उसी डिब्बे के सामने खड़े थे। आपके साथ कहार, चपरासी था। उसने सामान लिया और हम बातें करते हुए स्कूल पहुँचे। आप स्कूल के हेडमास्टर थे और उस दिन छुट्टी थी।

मैंने हाथ पैर धोये तो शर्बत का गिलास तैयार था और दो चारपाइयों पर बिस्तर लगे थे। शर्बत पिया, आज्ञा हुई कि लेट जाओ। आप भी लेट गये। मैं तो लेटते ही सो गया या खो गया, मुझे पता नहीं। लगभग दो घण्टे बाद आँख खुली तो आप बैठे मेरी ओर मुस्कराते हुए देख रहे थे। मैं घबरा कर उठ बैठा। थोड़ी देर बाद आपने मुझे घुमाया और क़स्बे का कुछ हिस्सा दिखाया। मकान पर आये तो कहार बाजार से पूरी-साग, मिठाई लाकर इन्तजार कर रहा था। हाथ पैर धोये आपने अपने सामने बिठला कर खाना खिलाया। फिर हम दोनों पास ही एक टूटी हुई मस्जिद के बरामदे में जाकर बैठे। आपने इशारे से हृदय चक्र के पांचों स्थान बताये और फिर ध्यान में बिठला कर इन पांचों पर ॐ नाम बोलता हुआ मुझे प्रत्यक्ष सुनवा दिया। बोले ये पाँचों चक्र तुम्हारे खुल गये हैं। अभ्यास करते रहना, सब ठीक हो जायेगा। दूसरे दिन मैं वहाँ से अपने घर चला गया। कालेज की छुट्टियाँ हो चुकी थीं।

इसके बाद जब भी अभ्यास में बैठता हूं यह याद और पाँचों चक्रों में ॐ का उच्चारण सुनता हूँ तो आप उसी प्रकार सम्मुख विराजते मालूम पड़ते हैं।

सीधा बैठना

उसी समय की बात है कि जब मैं इस पुरानी मस्जिद में आपके सम्मुख बैठा तो आदत के अनुसार सीधा, जिससे रीढ़ की हड्डी सीधी रहे, बैठ गया, जैसा कि हमारी धार्मिक पुस्तकों में बतलाया गया है। आपने सीधे हाथ से मेरा बायां कन्धा पकड़ा और आगे को झुका दिया और आज्ञा की, "खुदा के दरबार में अकड़ कर बैठना बेजा (अनुचित) है। अदब से बैठना चाहिए। "उस दिन से मैं सीधा तन कर नहीं बैठता। किसी को वैसे बैठे देखता हूं तो मुझे आपकी याद आ जाती है।

हमने कभी पुस्तक में पढ़ा था तथा कुछ धार्मिक संस्थाओं के आचार्यों से भी सुना था कि रीढ़ की हड्डी को सीधा रखकर बैठने से सुषुम्ना नाड़ी ठीक काम करती है और भजन ठीक बनता है। उसके बाद हम यह जानने का न तो यत्न करते हैं न सोचते हैं कि इसका क्या रहस्य है। हम तो "खुदा के दरबार में अदब से बैठ

जाते हैं।" हमें सब कुछ मिल जाता है। हम सुषुम्ना नाड़ी के विषय में कुछ नहीं जानते।

शेर क्या चीज है ?

सन् 1935-36 की बात है। मैं जयपुर में रहता था और श्रीमान छोटे चाचा जी (परम सन्त श्रीमान डा० कृष्ण स्वरूप साहिब) अजमेर से जयपुर आकर रहने लग गये थे। इन्हीं दिनों ठिकाना शाहपुरा के एक राजपूत जागीरदार के आग्रह पर आपका भोगाँव से पधारना हुआ। मुझे पहले से आपके पधारने के प्रोग्राम की सूचना थी और ऑफिस से लौटने पर सोच रहा था कि दर्शन के लिए चलूँ। इतने ही में इन्सपेक्टर पुलिस रेलवे स्टेशन ठाकुर कुशलसिंह जी पधारे और कहा, "श्रीमान मौलवी साहब आज पधारे हैं और शाहपुरा वालों के बाग में ठहरे हैं। चलिए दर्शन कर आवें।" हम दोनों साइकिलों पर नगर कोट से 2-3 मील दूर बाग में आपकी सेवा में पहुंच गये।

ऐसे संतों के पास बैठ कर वहां से उठ कर आने का किस का मन होता है ? शाम हुई, रात हो गई अचानक आपको ही ध्यान आया तो पूछा, "बेटे तुम्हें जाना तो नहीं है ?" मैंने उत्तर दिया "जाना तो है, घर पर इन्तजार हो रहा होगा।" ठाकुर साहब कुशलसिंह जी से पूछने पर उन्होंने बताया "मैं तो ड्यूटी में गश्त दिखा कर थाने से निकला हू वापिस पहुंचना आवश्यक है।" राव साहब (जागीरदार साहब) बोले "रास्ता खतरनाक है, पास में एक नाला पड़ता है वहां अधिकतर शेर मिल जाता है। कई लोगों का सामना हो गया है और कुछ घायल भी हुए हैं। अतः जाना उचित नहीं है। यहां आराम का प्रबन्ध है।" आपने कहा "नहीं ! इन्हें जाने दो।" मुझ से पूछा "बेटे तुम्हें डर तो नहीं लगता है ? देखो ! जो खुदा से डरता है उससे सब डरते हैं, शेर क्या चीज है ? जाओ बिना डर के जाओ।"

हम दोनों साइकिलों पर बैठे और लौट पड़े। हमें रास्ते में शेर तो क्या गीदड़ भी नहीं मिला। कितनी बड़ी शक्ति हमारे साथ थी ? उस शक्ति कि सामने शेर भी पस्त हो जाते हैं। आपके वे शब्द "देखो, बेटे ! जो खुदा से डरता है उससे सब

डरते हैं। शेर क्या चीज है" मुझे जीवन भर याद रहेंगे। जहां भी ऐसा अवसर आता है। ये शब्द मुझे निर्भय बना देते है। कभी शेर देखने में आता है तो भी आपके ये शब्द याद आ जाते हैं।

मंत्र

सन् 1837 में एक बार आपके जयपुर पधारने पर मैंने अपने स्थान पर भोजन के लिये आपको निमंत्रित किया। आपके साथ श्रीमान छोटे चाचा जी, हरी बाबू, राजे बाबू, मनोरमा आदि भी पधारे। भोजन के पश्चात् मेरी धर्मपत्नी आपके दर्शन के लिये आई। तो श्रीमान चच्चा जी महाराज ने परिचय कराया॰ "ये जग्गू (महात्मा श्री जगमोहन नारायण जी) की बहिन हैं।" आपको यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई। कहने लगे "हरनारायण से यह हमारा दूसरा प्यार का रिश्ता है।" इनका स्वास्थ्य उस समय कुछ ठीक नहीं था। आपने मुझे एक मन्त्र बताया कि इसे पिला दो, सब ठीक हो जायेगा। यह भी आज्ञा दी कि "जिसको समझो यह मंत्र बेधड़क दे दिया करो। खुदा के फ़ज़ल से फायदा होगा।"

इस मंत्र से मेरी धर्मपत्नी शीघ्र ही ठीक हो गई। फिर मैंने कितने ही असाध्य बीमारों को इससे अच्छा किया। परन्तु इसे अपने मित्रों तथा रिश्तेदारों तक ही सीमित रखा। दुनिया में प्रचार होने पर तो संभव था कि मुझे लोग धीरे धीरे करके अपनी राह से ही विचलित कर देते।

आसेव

आप अपने जीवन की अद्भुत घटनाएं बहुधा सुनाया करते थे। एक बार आपकी पोस्टिंग शिकोहाबाद में स्कूल के हेडमास्टर के रूप में हुई तो वहां आपके लिए मकान की खोज हुई। छोटे क़स्बों में अच्छे मकान कठिनाई से ही मिलते थे। एक मकान ठीक ठाक तो था परन्तु लोगों ने कहा कि उसमें आसेव (भूत) रहता है। रहने वालों को कष्ट देता है, मार भी डालता है, अतः ठीक नहीं है। आपने उत्तर दिया कि "आसेव मेरा क्या करेगा ? मैं तो उसी में रहूंगा। आप ठीक कर दीजिये।"

मकान की सफाई की गई। आप उसमें रहने के लिये चले भी गये। रात्रि को भोजन आदि के बाद नौकर को, उसके आग्रह करने पर भी कि आप अकेले हैं मकान में खतरा है, आपने उसे जाने को कहा। आप दालान में बिस्तर पर लेटे तो सहन में जो एक बड़ा सा सेजने का पेड़ था वह हिला, आपने ध्यान नहीं दिया। फिर अधिक जोर से हिला तो आपसे लेटा नहीं गया। उठे, देखा कि यह आसेव दरख़्त पर बैठा उसे हिला रहा है। "अच्छा आप हैं !" कहते हुये उठे, खूंटी पर से हंटर उतारा और मंत्र पढ़-पढ़ कर उस दरख़्त को मारना शुरू कर दिया। उस दरख़्त की शाख़ें जमीन से लग-लग जाती, परन्तु आप जब तक थक नहीं गये उसे मारते रहे। फिर आकर अपने बिस्तर पर लेट गये।

वह आसेव इस मार से बेहाल हो चुका था। आकर पैर दाबने लगा। आपने उससे इतना ही कहा "आइन्दा जरा भी शरारत देखी तो जिन्दा जला दूंगा।" फिर वह आसेव जब तक आप वहां रहे, सेवा करता रहा। तबादला होते समय उसकी सेवा से प्रसन्न होकर उसे मुक्त कर दिया, अर्थात उसकी योनि ही छुड़ा दी। संत ऐसे दयालु होते हैं। उसी पिशाच के सौभाग्य के लिये क्या आप उस मकान में रहने गये थे ?

शेर का शिकार

आपकी ही सुनाई हुई एक घटना सुनिये। मास्टरों के लिये बड़ी गर्व की बात यह होती है कि उनके पढ़ाये विद्यार्थी आगे चल कर बड़े-बड़े उच्चाधिकारी बने। यद्यपि उन्हें कोई सांसारिक अथवा आर्थिक लाभ नहीं होता। फिर भी उन्हें हार्दिक आनन्द अवश्य होता है।

ऐसे ही आपके एक शिष्य एक बड़े ऑफिसर होकर उत्तर प्रदेश के उत्तर प्रांत में ड्यूटी दे रहे थे। घर आये तो आपसे मिलन आये और विनय पूर्वक आग्रह किया कि कुछ समय आप हमारे पास पहाड़ी प्रांतों की सैर के लिये पधारें। आप चले गये तो बड़े प्रेम पूर्वक आदर से आपको अच्छे-अच्छे मनोरंजन के स्थान दिखाये। फिर एक शेर का शिकार दिखाया जो कि एक अद्भुत घटना थी। हम उसे

आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

एक बड़ी सी झील के तट पर एक डाक बंगले के प्लेटफार्म पर आप सब बैठे थे। देखा दो भाई (छोटे लड़के की आयु 10 वर्ष और बड़े की 12 वर्ष) शेर के शिकार को निकले। कोई हथियार नहीं केवल एक-एक सवा फुट पीले पाइप का टुकड़ा दोनों के हाथ में था जिसे वे लोग बंसी कहते थे। छोटा लड़का शेर के सामने झाड़ी में चला जाता है उसे पत्थर मार कर जगाता और उत्तेजित करता है। दूसरा भाई बाहर प्रतीक्षा में खड़ा है। जब शेर उठ कर उस लड़के पर झपटता है तो वह भाग कर बाहर आता है और झील में कूद पड़ता है। उसके साथ-साथ शेर भी पानी में कूद जाता है। जब दोनों ऊपर आते हैं तो लड़का शेर की पीठ पर। दूसरा भाई भी साथ ही पानी में कूदता है और साथ-साथ तैरता है। पीठ पर बैठा लड़का उस बंसी से शेर के मुंह पर मारना आरम्भ कर देता है, कभी इस हाथ से कभी उस हाथ से। शेर को वार नहीं लेने देता और पीठ पर जकड़ा बैठा बराबर मार रहा है। शेर पानी के ऊपर रहने के लिये तैरता तो है, परन्तु उसका और कोई वश नहीं चलता।

लोहे की नाल से मार खाते-खाते उसकी नाक से खून बहता है परन्तु मार फिर भी लगती रहती है। भाई हिम्मत बँधाता है, मार साले को, अब इधर के जबड़े पर अब नाक पर, इत्यादि। थोड़ी देर में शेर घायल होकर बेहोश हो जाता है। अब लड़का घूम कर उसकी गुदा में वह बंशी घुसाता और शेर का मुँह थोड़ा ऊंचा कर देता है जिससे शेर के पेट में पानी भर जाय और उसे मरने को छोड़ देता है। थोड़ी देर बाद उसकी पूंछ पकड़ कर घसीट कर दोनों भाई उसे किनारे पर डाल देते हैं। शिकार हो गया, सब मिलाकर एक घण्टा लगा। लड़कों को इनाम दिया गया। आप बहुत प्रसन्न हुये। हमें यह घटना सुनाते हुये भी उतने ही प्रसन्न थे।

यह घटना कहिए किस्सा कहानी कहिए, आप जो चाहें कह लीजिए। हमें तो शेर की तस्वीर भी देखने पर यही घटना याद आ जाती है कि जैसे आप सुना रहे हैं, प्रसन्न मुद्रा में और हम सुन रहे हैं। हमारा इस घटना से केवल इतना ही प्रयोजन है।

प्रेत की नौकरी

आपकी सुनाई हुई एक और घटना सुनिये । यह तो पुरानी बात है कि भारत को संसार के सारे देश 'सोने की चिड़िया' अर्थात सर्व सम्पन्न देश कहा करते थे । एक अफगान लड़का 15-16 वर्ष का रोजगार की खोज में इधर निकल पड़ा । राह में एक संध्या को कहीं जाते-जाते रात्रि हो गई । तो सुनसान बीहड़ में एक मस्जिद में जाकर सो गया । आधी रात होने पर एक कटा हुआ हाथ उसके पास गिरा, फिर दूसरा । लड़का उठा अपनी तलवार निकाली और जिधर से उसे सन्देह था जोर जोर से चलाने लगा । प्रेतात्माओं पर इसका क्या प्रभाव होता, वे तो सूक्ष्म शरीर में होते हैं । थक कर बैठ गया और बोला "सामने आये तो लड़ूं भी । यूं छिप-छिप कर कुछ भी करता रह । मैं डरने वाला नहीं ।" उत्तर में आवाज आई, "लड़के तुम नौकरी के लिए घर से निकले हो । हम तुम्हारी बहादुरी और दिलेरी से खुश होकर तुम्हें आज ही से एक अशर्फी रोज की तनख्वाह पर अपने यहां नौकरी रखते हैं । दोनों वक्त खाना भी मिलेगा । काम अभी तो कुछ नहीं ! जब होगा बतला देंगे ।"

लड़के की मौज हो गई, दोनों वक्त अच्छा-अच्छा भोजन और हर सप्ताह सात अशर्फी सोने की । हर तीन महीने बाद 15 दिन की छुट्टी घर जाने की और सौ अशर्फी खर्च के लिये । इस तरह कई मास गुजर गये । एक शाम को हुक्म सुनाया गया कि 'कल यहां एक तांत्रिक आ रहा है । उसके पास एक बेंहगी में शीशे की बोतलों में बड़ी बड़ी प्रेत आत्मायें बन्द हैं, हमें भी वह मन्त्र द्वारा बोतल में बन्द करेगा । तुम्हारा काम यह होगा कि जितनी बोतलें उसके पास हो मौका पा कर डण्डे से मार-मार सब को तोड़ डालना ।' लड़के ने कहा, 'ऐसा ही करुंगा ।'

दूसरे दिन वह तांत्रिक आया और उसने अपनी बेंहगी आदि वहां रक्खी और मन्त्र द्वारा प्रेत आत्माओं को पकड़ने का कार्यक्रम आरम्भ किया । इधर वह अपने काम में लगा । तो लड़का अपने काम में लग गया । सारी बोतलों में प्रेत आत्माएँ एक साथ निकल पड़ी । और उस तांत्रिक को बड़ी कठिनाई से अपनी जान बचाकर भाग जाना पड़ा । उन प्रेतों ने उस लड़के को उतनी दौलत दी और नौकरी

से मुक्त कर दिया कि काबुल के अमीरों में उसकी गिनती हो गई।

इस कहानी का हमारे आध्यात्म मार्ग से कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु हमें तो इसके माध्यम से एक ऐसे संत की याद आ जाती है जिसने हमें बहुत कुछ दिया। हमें तो अब भी यह संत प्रत्यक्ष रूप में दरसते हैं तथा उनकी पवित्र आत्मा से आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती है।

नेकर का पहनावा

सन् 1941 में मुझे दौरे का काम मिला हुआ था। एक बार मैं दौरे से लौटा तो मुझे आपके आगमन की सूचना मिली। मैं तुरन्त ही आप के दर्शनों के लिये चला गया। आपने बड़े प्यार से मुझे अपने पास बिठा लिया और बातें करते रहे।

मैं दौरे से लौटा था, नेकर शर्ट पहने था, वैसे ही आपके पास चला गया। थोड़ी देर बाद आपने इस ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करके बतलाया कि "यह लिबास बड़ी बदतमीजी का है, घुटने खुले रहते हैं। तुमने बेटे उसे क्यों अपना लिया ?" मैंने उस दिन जो घर आकर नेकर उतारा तो उसके बाद नहीं पहना। किसी को नेकर पहने देखता हूं तो श्रीमान की उस दिन की वह बात याद आ जाती है कि घुटने खुले रखना बदतमीजी है।

मैं जब कभी आपके सामने जाता तो सिर पर टोपी लगाने का विशेष ध्यान रखता और जब तक उनके पास रहता टोपी पहने ही रहता था। ऐसा ही मैं अन्य महापुरुषों के साथ भी करता था। हमारे आध्यात्म समाज की परम्पराओं के अनुसार वह एक आदर भाव (अदब का सूचक) रहा है। अब भी महापुरुषों की समाधियों पर अथवा अपने से बड़ों के सामने जाते समय मैं इस बात का ध्यान रखता हूँ।

मक्र

एक बार आपका कानपुर पधारना हुआ। उन दिनों बड़े भाई साहब

महात्मा बृजमोहन लाल साहब की पोस्टिंग फ़तेहपुर पुलिस ऑफिस में थी। वे भी कानपुर आ गये। भाई साहब ने आपको बतलाया कि एक सूफी बुजुर्ग फ़तेहपुर के पास एक छोटे उपनगर में रहते हैं उनकी लोग बहुत प्रशंसा करते हैं। आपने फरमाया चलो उनसे मिलें।

आप दोनों फ़तेहपुर गये। साथ में भाई साहब महात्मा राधामोहन लाल साहब (मुंशी भाई साहब) भी गये। जब उन बुजुर्ग के मकान पहुँचे तो दिन के दस बजे होंगे। उनके नौकर ने बतलाया कि हुजूर सूफी साहब नमाज अदा करने मक्का शरीफ गये हुए हैं-आप थोड़ा इन्तजार करें। ये सब बरामदे में बैठ गये। थोड़ी देर बाद कमरे का दरवाजा खुला और आप तीनों महानुभाव अन्दर बुला लिये गये। सूफी साहब बड़ी दाढ़ी वाले गद्दी तकिया लगाये सामने बैठे थे। सलाम पेश करके आप तीनों महानुभाव उनके सामने दुज़ानू बैठे गये। दोनों भाई साहबान आपके आजू-बाजू बैठे। ध्यान की मुद्रा में आपने उन बुजुर्ग से कुछ कृपा धार (तवज्जोह) देने को आग्रह किया। तो कोई उत्तर न मिला। जब कई बार आग्रह करने पर भी उन बुजुर्ग से कुछ न मिला- तो आपको जलाल आ गया। फरमाया "आप के पास नहीं है तो लीजिये।" ये कह कर कृपा धार की धुआंधार दृष्टि उन पर करने लगे। उन बुजुर्ग से सहन (बरदाश्त) नहीं हुआ और "बड़े भाई " "बड़े भाई" कहते हुए उठे और आपके क़दमों में आ गिरे। आपने उनको आदर से उठा कर गद्दी पर बिठलाया। उन बुजुर्ग ने अपने लड़के को बुलाकर रुपये भेंट (नजर) करवाये और बड़ा आदर सत्कार किया। परन्तु हुजूर महाराज उनके पास अधिक न ठहरे और चले आये।

फ़रमाते थे कि दुनियाँ को अपनी बुज़ुर्गी करामात दिखलाने को मक्का शरीफ़ जाने का उपक्रम करते हैं। यह मक्र है और खुदा के रास्ते के ख़िलाफ़ है। इसीलिये ये किसी का भला करने के लायक नहीं हैं।

दिल बड़ा या दिमाग

आपके एक प्रिय शिष्य श्री कैलाश नाथ भटनागर जो कि उत्तर प्रदेश के पी॰ सी॰ एस॰ के एक बड़े अधिकारी थे तथा 1972 में रिटायर हो चुके हैं, आपके

पास बैठे थे। आपने उनसे पूछा, "बेटे बतलाओ दिल बड़ा है या दिमाग ?"

श्री भटनागर ने उत्तर दिया कि "मेरी समझ में तो हुजूर दिमाग को ही बड़ा समझना चाहिए।"

प्र०- "दिमाग में ख़राबी हो जाय तो क्या होता है ?"

उ०- "हुजूर ! आदमी पागल हो जाता है।"

प्र०- "अगर दिल में ख़राबी हो तो क्या होता है ?"

उ०- "हुजूर मौत हो जाती है।"

प्र०- "फिर कौन बड़ा हुआ ?"

उ०- "हुजूर इस तरह तो दिल ही बड़ा हुआ।"

आपने फ़रमाया, "दिल बादशाह है और दिमाग उसका वजीर। हम लोग दिल को ठीक करते हैं-बाकी सब खुद ब खुद ठीक हो जाता है।"

पुराने सन्तों से सम्पर्क

आप एक बार बहराइच पधारे। वहां कुछ लोग आपको एक पुराने सन्त की समाधि पर ले गये और कहा कि इस समाधि की मान्यता तो बहुत है परन्तु लोग यह नहीं जानते कि यह किस महापुरुष की समाधि है ?

आपने समाधि पर नमाज पढ़ी और ध्यान की घनी अवस्था में उन संत से भेंट की और उनका नाम पूछा तो आँखों के सामने एक बड़ा प्रकाशमय धनुष और उसके बीच में अति प्रकाशमान चन्द्रमा दिखलाई पड़ा। प्रकाश इतना अधिक था कि आँखों को चकाचौंध होती थी। आपने फ़रमाया, "मैंने तो नाम पूछा था आपने करिश्मा दिखलाया ?"

उत्तर मिला "मैंने नाम ही बतलाया है-करिश्मा नहीं दिखलाया। मेरा नाम धनुष चन्द्र था।" प्रश्न किया आप यहाँ कब थे ? उत्तर मिला, "करीब तीन हजार वर्ष पहले।" -फिर आपने फरमाया कि वे साहब नबी थे।

एक बड़े विद्वान से भेंट

एक बार एक बड़े विद्वान जो अरबी तथा फारसी के धुरन्धर ज्ञाता थे हमारे बड़े हुजूर महाराज से मिलने आये। बड़े हुजूर महाराज स्वयं भी इन दौनों भाषाओं के एक जाने माने धुरन्धर विद्वान थे। इनकी लिखी कुछ पुस्तकें इन भाषाओं में बड़ा आदर पा रही हैं। इन आगन्तुक विद्वान ने बड़े हुजूर महाराज से भेंट के समय विद्या तथा धार्मिक विषयों पर कुछ चर्चा करनी चाही। पूज्य मौलवी साहब से उन विद्वान ने कुछ ऐसी जानकारी भी चाही जिसका उन्हें ज्ञान नहीं था। कायमगंज में साधारण लोग 'मालूम को 'मलूम' उच्चारण करते हैं। अतः आपने भी आदतन कह दिया "मुझे मलूम नहीं।" इस पर विद्वान ने कटाक्ष किया- "जहां के आलिमों का यह हाल है तो या खुदा ! वहां के जाहिलों का क्या हाल होगा ?" आपने उन विद्वान महोदय को आधीनता भरा उत्तर दिया- "मैं तो इस विषय में कुछ अधिक जानता नहीं हूं। हाँ मेरे पास एक लड़का आता है। मैं उसे आपके पास भेज दूंगा। आशा है वह आपके सारे प्रश्नों का उत्तर दे सकेगा।"

बड़े हुजूर महाराज ने आपको बुलाया और कहा कि बेटे तुम्हें कल प्रातः उन बुजुर्ग के पास जाना है। वे जो कुछ प्रश्न पूछें उनका सही-सही उत्तर देना है। और हाँ, एक बात और है-जब वे सारे प्रश्न कर चुकें तब तुम भी उन विद्वान महोदय से एक प्रश्न करना और ऐसा प्रश्न करना जिसका वे उत्तर न दे सकें, और यदि ऐसा न कर सको तो मुझे मुँह मत दिखाना।

हमारे हुजूर मौलवी साहब की आयु उस समय लगभग दस साल की थी। प्रातः तैयार होकर वे पहले गुरुदेव के पास गये और उनकी आज्ञा लेकर उन विद्वान महोदय के स्थान पर पहुँच गये और अपना परिचय दिया। वे विद्वान इन्हें देखकर प्रसन्न हुए और कुशल क्षेम पूछने के बाद इन्हें बालक समझ एक छोटा सा प्रश्न

किया। इस प्रश्न का इन प्रतिभाशाली महोदय ने ऐसा उत्तर दिया कि इनकी विद्या से वे बहुत प्रभावित हुए और फिर उन्होंने कई प्रश्न जटिल, से जटिल भी पूछ डाले। इन सभी प्रश्नों का उत्तर हमारे इन छोटे महोदय ने ऐसे दिये कि इन की विद्वता का उन्हें लोहा मानना पड़ा। अपने गुरुदेव की आज्ञानुसार इन्होंने भी उन विद्वान महोदय से आज्ञा लेकर एक प्रश्न पूछा। प्रश्न भाषा विज्ञान के एक ऐसे जटिल विषय का था जो आन्तरिक अभ्यास से संबंध रखता था और जिसके विषय में उन विद्वान महोदय कोई जानकारी नहीं थी। वे विद्वान तो बड़े थे परन्तु आन्तरिक अभ्यास में कोरे थे। उन्हें इनके प्रश्न का उत्तर नहीं आया वे बोले- "भाई मैं इसका उत्तर कुछ सोच कर ही दूंगा। तुम्हारा प्रश्न बहुत अच्छा है। मैं तुम्हारी विद्वता से बहुत प्रसन्न हुआ। तुम्हारे गुरुदेव क्या होंगे इससे ही मैं अनुमान लगा सकता हूं। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं कि तुम भी अपने गुरुदेव के समान बड़े विद्वान बनो और दीर्घायु होओ। अपने गुरुदेव से मेरा सलाम अर्ज़ करना।"

उन विद्वान महोदय से विदा लेकर जैसे ही आप अपने गुरुदेव के पास पहुँचे, गुरुदेव ने फरमाया "शाबाश बेटे ! मुझे तुम से यही आशा थी। तुमने उनके प्रश्नों के उत्तर खूब-खूब दिये और अन्तिम प्रश्न भी ऐसा किया कि उन्हें उत्तर देते नहीं बना। शाबाश ! बेटे शाबाश !"

सच तो यह था कि इतने समय अपने शिष्य में आप स्वयं समाये रहे और उत्तर देते रहे। यह किस प्रकार सम्भव है, हमारे सत्संग के अभ्यासी भली-भांति जानते और समझते हैं। ऐसे सन्त अपने शिष्यों में समय-समय पर अथवा सदा के लिये भी प्रवेश कर जाते हैं। सूफियों की भाषा में इस को "फनाफिल मुरीद" कहते है। संतों में यह एक बहुत ही ऊँचा दरजा है।

कहीं विद्वानों के प्रश्नोत्तर होते देख हमें भी हमारे श्रीमान जी कि घटना की याद आ जाती है तथा उनके प्रेम का सागर हमारी ओर ओत-प्रोत होता हुआ लगता है।

"मृतक की आत्मा का साक्षात्कार"

सन् 1926 की एक घटना इस प्रकार है कि जब आप कानपुर पधारे हुए थे, एक रिटायर्ड मुन्सरम (जज की कोर्ट के), जो हमारे श्रीमान लाला जी महाराज के कुछ पारिवारिक सम्बंधी भी थे, आपके दर्शनों को आये। वे बहुत दुःखी थे, कुछ दिनों पहले उनका इकलौता पुत्र जो M.B.B.S करके आया था और विवाहित भी था उसका असामयिक निधन हो गया था।

इन मुन्सरम साहब ने आपसे अनुरोध किया कि मुझे एक बार मेरे पुत्र को दिखला दीजिये। आपने उत्तर में यही कहा कि इससे आपकी अशान्ति दूर नहीं होगी, बढ़ सकती है परन्तु मुन्सरम साहब ने अपनी इच्छा पूर्ति के लिये फिर भी बार-बार प्रार्थना की। आप उन्हें एक अलग एकान्त कमरे में ले गये। कमरा बंद किया और कहा आप बैठ जाइये और अपने स्थान से न तो हिलिये और न बोलिये। थोड़ी देर बाद वह आत्मा अपने पुराने वेश में उनके सामने उपस्थित हो गई। मुन्सरम साहब से रहा नहीं गया और उसे पकड़ने और चिपटाने के लिये उठ खड़े हुए तभी वह आत्मा अन्तर्ध्यान हो गई। इसके बाद मुन्सरम साहब की हालत पहले से ज्यादा खराब हो गई, जैसा कि आपने पहले ही कह दिया था। यह एक साधारण सी साधना है जो मंत्र शक्ति द्वारा सम्पन्न हो जाती है। संत इस प्रकार के चेटक-नाटक से सदा बचे ही रहते हैं, परन्तु कभी उनकी इच्छा हो तो इसे काम में ले भी लेते हैं। सन्तों की जैसी इच्छा जिस समय हो जाय। प्रकृति की अनेकानेक शक्तियाँ सन्तों की इच्छा पूर्ति के लिये लालायित रहती हैं परन्तु सन्तों को अपने प्रियतम की याद से अवकाश ही कहां मिलता है। इस विषय की बात से हमें हुजूर साहब की याद आ जाती है और उनकी कृपा की धारा आती प्रतीत होती है।

यादें

संस्मरण - (भाग 4)
परम संत महात्मा डॉ० कृष्णस्वरूप जी महाराज

निवासी जयपुर

परिचय

आपका जन्म भी स्थान भूमिग्राम में 22-12-1879 को हुआ । आपके पिता श्रीमान उल्फत राय साहिब जो परम पूज्य श्रीमान लाला जी महाराज के पूज्य पिता श्रीमान हरबख्श राय साहब के छोटे भ्राता थे, भूमिग्राम में ही रहकर कुटुम्ब की जमीन जायदाद आदि का कार्य देखा करते थे। इस प्रकार आप श्रीमान लाला जी महाराज तथा कानपुर वाले श्रीमान चच्चा जी महाराज के चचेरे भाई थे। बचपन से ही श्रीमान लाला जी महाराज तथा उनके गुरुदेव के सम्पर्क में रहे और आध्यात्म के गुरु के रूप में पूर्णता प्राप्त की। आपने आगरा मैडिकल स्कूल में उच्च शिक्षा प्राप्त करके पहले तो बी० बी० सी० आई० रेलवे (जिसे अब वेस्टर्न रेलवे कहते हैं) में सेवा की, फिर रतलाम, सैलाना आदि में वहां के अस्पतालों के प्रमुख डाक्टर रहे। इसके बाद यह सब छोड़ कर अजमेर में आकर प्रेक्टिस करने लगे।

इन्हीं दिनों, राजस्थान में हमारे गुरुदेव श्रीमान लाला जी महाराज के एक प्रमुख शिष्य पूज्य (स्वर्गीय) ठाकुर रामसिंह जी के अनुपम आदर्श तथा व्यवहार से प्रेरित हो उन्हीं के पुलिस विभाग के सत्संग में रुचि रखने वाले छोटे बड़े कर्मचारियों ने अजमेर जाकर श्रीमान जी से अनुरोध किया कि आप अजमेर छोड़कर यदि जयपुर में बसें तो हमें आपकी सेवा तथा सत्संग का लाभ मिलेगा। इस अनुरोध को आप टाल न सके और 1934 में जयपुर आकर बस गये तथा अपने व्यवसाय के अतिरिक्त यहाँ आध्यात्म के द्वारा सर्व साधारण की वर्षों तृप्ति करते रहे।

परमसंत महात्मा कृष्णस्वरूपजी

जयपुर (राजस्थान)

श्रीमान के जयपुर के निवास काल में मेरा भी आपसे अधिकाधिक सम्पर्क तथा स्नेह हो गया तथा मैं भी आपकी सेवा में रहकर आपके द्वारा विशेष रूप से प्रभावित तथा लाभान्वित हुआ।

इस प्रकार श्रीमान ने सन् 1934 से लेकर 1958 तक यहां रहकर आध्यात्म के प्यासे लोगों को पर्याप्त रुप से तृप्त किया। श्रीमान के सम्पर्क तथा शिक्षा आदि संबंधित कुछ संस्मरण पाठकों की सेवा में भेंट हैं।

जीवन के अन्तिम समय में आप कुछ मास बीमार रहे। फिर आपके बड़े सुपुत्र श्रीमान महात्मा नरेन्द्र मोहन जी, जो उस समय टौंक में एस॰ डी॰ एम॰ थे यहां से अपने पास ले गये। आपका स्वर्गवास वहीं ता॰ 18-9-1958 को हुआ। अन्त समय में आपके परिवार के सदस्य तथा प्रमुख शिष्य गण आपकी सेवा में उपस्थित थे।

आपकी समाधि भी फतेहगढ़ में श्रीमान लाला जी महाराज की समाधि के प्रांगण में सन् 1979 में बनी। यह बीच के 21 वर्ष का समय इसी में निकल गया कि इनके शिष्य तो समाधि मालवा में बनाना चाहते थे तथा परिवार के सदस्य जयपुर में। अन्त में महात्मा दिनेश कुमार जी का यह सुझाव सर्व स्वीकृत हुआ कि आपकी समाधि फतेहगढ़ समाधि परिसर में ही बनाई जावे।

अतः श्रीमान के सबसे पुराने शिष्य श्रीमान जगन्नाथ जी सैलाना वालों ने 1979 में इस कार्य को आरम्भ किया और फिर इनके भतीजे श्रीमान यादव लाल जी ने इसे पूर्ण किया।

ता॰ 22-12-1979 को आपकी जन्म शताब्दी, जन्म से 100 वर्ष पूरे होने पर फतेहगढ़ में बड़ी धूमधाम से मनाई गई। श्रीमान के बहुत से शिष्य, जो मालवा प्रान्त में रहते हैं, आपको अन्य किसी नाम से न पुकार कर 'श्रीमान' ही कहा करते थे और अब भी कहते हैं। अतः यहां हम भी आपको 'श्रीमान' ही कह कर सम्बोधित कर रहे हैं।

श्रीमान बड़े विनोद प्रिय थे। आपकी कुछ ऐसी घटनाएँ भी प्रस्तुत हैं जिनसे श्रीमान की विनोद-प्रियता स्पष्ट रूप से झलकती है।

डाकू सरदार के डेरे में

श्रीमान अपनी बहुत पुरानी घटनायें सुनाया करते थे। जिन दिनों आप मालवा में सैलाना की स्टेट डिस्पेन्सरी में डाक्टर थे, आपको पुलिस सब इंस्पेक्टर के साथ किसी पोस्ट मार्टम आदि के लिये जाना पड़ा। उन दिनों वहाँ बड़े-बड़े डाकू जंगल में रहते थे। रेल की तो क्या कच्ची सड़कों तक की सुविधा भी उपलब्ध नहीं थी। आप दोनों घोड़ों पर संवार वहां से लौट रहे थे कि रास्ता भूल गये और डाकू सरदार के पड़ाव के पास पहुंच गये। डाकू सरदार के आदमियों ने उन्हें देख भी लिया, भाग कर जाते भी कहाँ, रास्ता नहीं मालूम था। उस डाकू सरदार के आदमियों ने इन्हें ले जाकर डाकू सरदार के सामने प्रस्तुत कर दिया। यह डाकू सरदार श्रीमान के पास दवा आदि के लिये कभी आया था, तुरन्त पहचाना गया और बड़े आदर से नमस्कार करके उन्हें अपने डेरे में ले जाकर पलंग पर बिठाया।

डाकू भील था और उसके साथी भी भील थे। आपको संभव है पता हो कि उस समय भीलों को नीचे दरजे का मानते और उनके हाथ का खाना-पीना नहीं लेते थे। डाकू च ने भोजन का सब सामान तो मँगा लिया पर सोचने लगा, पकाकर कौन खिलायेगा। उसे तुरन्त ही ध्यान आया कि यह सब-इंस्पेक्टर ब्राह्मण है, बोला "ओ ! चीफ ! डाक्टर साहब के लिये खाना बना, यह सामान ले और क्या चाहिये बतला ?" चीफ बिचारा पहले ही डर रहा था कि डाक्टर साहब का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, मेरे साथ यहाँ जाने क्या व्यवहार किया जायेगा। बेचारे ने खाना बनाया, डाक्टर साहब को खिलाया फिर भील सरदार के कहने से स्वयं भी खाया, मगर डर लगा ही रहा। उसके बाद डाकू सरदार ने अपने दो आदमी उनके साथ भेजे कि इन्हें घर पहुंचा कर आओ और दोनों सकुशल घर आ गये।

शब्द भेदी बाण

एक बार आपने एक अन्य घटना यह सुनाई कि डाकू सरदार का एक आदमी उन्हें बुलाने आया, कहा कि एक स्त्री बीमार है, उसे देखने चलना है। घोड़े लाया था। आप उसके साथ चले गये। संयोगवश इनके पहुंचने के पहले ही वह स्त्री मर गई। इन्हें आता देख डाकू सरदार ने आदमी दौड़ाया और इन्हें दूर ही रोक दिया। फिर स्वयं आया, फीस के रुपये अर्पण किये। आपने कहा "बीमार देखा ही नहीं, फीस किस बात की ?" मगर डाकू सरदार क्या मानता- "यह तो लेनी पड़ेगी, आप यहाँ तक आ जो गये।"

लौटते समय संध्या हो रही थी। अंधेरे में भील आगे-आगे और आप घोड़े पर पीछे-पीछे चल रहे थे। खेतों में इतनी ऊंची घास थी कि सामने का व्यक्ति भी कठिनाई से दिखाई देता था। आपने आवाज दी, "ओ भील ! ओ भील !" भील तुरन्त लौटा, बोला "बापजी ! बोलो मत यह घोड़ा सधा हुआ है, सब रास्ते जानता है, मैं न होता तो भी यह आपको घर पहुंचा देता। यहाँ हमारे कई साथी पहरा देते और घूमते रहते हैं। वे आप की आवाज नहीं पहचानते। गैर समझ कर कोई शब्द भेदी बाण चला सकता है। आप चुपचाप चले आओ।"

आपने बतलाया कि घर पहुंचने पर संतोष हुआ। रास्ते में तो दुविधा ही लगी रही।

कगदबा सार

आपने एक बहुत पुरानी घटना हमें सुनाई। कानपुर के पास गंगा किनारे विठूर नामक एक ग्राम है। वहाँ महर्षि बाल्मीकी का आश्रम है। बतलाया जाता है कि कभी महारानी सीता अपने वनवास के समय यहां रहीं थीं तथा इनके पुत्र रत्न लव, कुश दोनों का जन्म यहीं हुआ था। श्रीमान लाला जी तथा श्रीमान चच्चा जी आदि बहुत से सदस्यों के साथ आप वहां गये तथा सत्संग आदि के प्रोग्राम में वहाँ ठहरे। आसपास के लोगों को पता चला कि यहाँ कोई डाक्टर भी आये हुए हैं। आ गए

बेचारे दवा लेने। आपने उन सब को होमियोपैथिक दवा की छोटी-छोटी पुड़िया बना कर दीं। दूसरे दिन एक रोगी आकर अपनी भाषा में कहने लगा, "डाक्टर साहब, दवाई तो बहुत नीक रहें-कगदबा सार गरेवा में हिरगत रहे।" मतलब दवा तो बहुत अच्छी थी मगर वह साला कागज गले में अटकता था। यह सुन आप तथा और सत्संगी जो वहाँ उपस्थित थे, मारे हंसी के लोट-पोट हो गये। वह देहाती दवा की पुड़िया ही निगल गया जिसके गले में उलझने की शिकायत की।

जब भी आप यह घटना सुनाते, हंसी के मारे हम सब का भी बुरा हाल हो जाता। हमने भी यह घटना कुछ लोगों को सुनाई तो वे भी खूब ही हँसे।

छींक

श्रीमान की विनोद प्रियता का एक और उदाहरण प्रस्तुत है। अजमेर नगर में श्रीमान अपनी क्लिनिक में बैठे थे, जाड़े की चढ़ती हुई धूप थी। सड़क पर देखा कि एक सज्जन सूर्य की ओर देखते हुये छींक लेने के प्रयत्न में चले आ रहे हैं। उनके सामने से एक दूसरे सज्जन कुछ सोचते हुए नीची दृष्टि किये उधर ही आ रहे हैं। जैसे ही ये एक दूसरे के पास पहुँचे उसी समय पहले सज्जन को जोर से छींक आयी। इन दोनों सज्जनों के सिर इतनी जोर से टकराये कि सड़क पर चलते, दुकानों में बैठे सब का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। वे दोनों सज्जन एक दूसरे को दोष देने लगे परन्तु देखने वालों को इतनी हंसी आई कि बेचारे दोनों, चोट खाये हुए व्यक्ति, लज्जास्पद स्थिति में आ गये और चुपचाप चले गये।

श्रीमान जब भी इस घटना का वर्णन करते तो हम सब हंसी के मारे लोट-पोट हो जाते।

सैलाना नरेश

जिन दिनों श्रीमान सैलाना (मध्य प्रदेश की पहले एक छोटी स्टेट थी) रहे वहाँ के नरेश महाराजा साहब आपका बड़ा आदर करते थे। बहुधा आप से अपने प्राइवेट सेक्रेट्री का काम भी लिया करते थे। ये महाराज बड़े वेदान्ती थे और वेदों

का अध्ययन भी करते थे। एक बार श्रीमान ने वेदों की बड़ी-बड़ी पुस्तकें मेज़ पर रक्खी देखकर आपसे पूछ लिया, "दाता ! ये क्या है ?" उत्तर मिला "डाक्टर, जो तुम करते हो वही मैं भी करता हूं। अन्तर इतना है कि तुम दिखावा नहीं करते मैं दिखावा करता हूं।" इन्हीं महाराजा साहब के छोटे सुपुत्र महाराज मान्धाता सिंह, जो बाद में बीकानेर स्टेट के दीवान भी रहे, श्रीमान को अपना गुरु मानते थे और अपने पिता के समान आदर करते थे।

सद्गुरु की पदवी

हमारे इस आध्यात्म मार्ग की यह परम्परा रही है कि सद्गुरु की पदवी जब गुरु अपने किसी शिष्य अथवा अधिकारी को देते हैं तो ऐसे गुरु लोगों की सभा में उन सब उपस्थित गुरुओं की सम्मति से उन सबके सामने देते हैं। यदि ऐसा कोई अवसर न आ पाये तो यह आज्ञा लिखित में होती है। जब लिखित में होती है तब पदवी तथा अधिकार देने वाले गुरु के अतिरिक्त उस समय के किसी दूसरे अधिकार प्राप्त सद्गुरु से भी उनकी अनुमति लिखित में ली जाती है। यह अनुमति देने वाले गुरु यदि उस शिष्य को इस योग्य समझते हैं तो अनुमति देते हैं, अन्यथा वापिस लौटा देते हैं जिसका अभिप्राय यह होता है कि उनकी दृष्टि में वह शिष्य अभी इस योग्य नहीं है। यदि वह उस शिष्य को ऐसा अयोग्य पाते हैं जिसको गुरु पदवी देना उनकी दृष्टि में अनुचित होता है तो वे उसे फाड़ भी देते हैं। यदि किसी का आज्ञा पत्र इस प्रकार फाड़ दिया जावे तो फिर उसे (सन्त सद्गुरु की पदवी कभी नहीं मिलती। यहां यह बताना आवश्यक है कि चार प्रकार की पदवियाँ (इजाज़ते) होती हैं। (1) मानीटर (2) शिक्षक (3) गुरु पदवी (इजाज़त बैत (4) सन्त सद्गुरु पदवी (इजाज़त ताअम्मा)। पहली दो प्रकार की पदवियाँ मौखिक भी हो सकती हैं और लिखित भी परन्तु शेष दो पदवियाँ (इजाज़त बैत व इजाज़त ताअम्मा) का लिखित होना अनिवार्य है।

हमें यह बातें समय के सत्गुरुओं द्वारा ही मालूम हुई। हमारे पूज्य भाई साहब परम सन्त डा० श्री कृष्णलाल साहब (सिकन्द्राबाद वालों) ने ही यह बतलाया था कि हमारे गुरुदेव श्रीमान लाला जी महाराज ने अपने अंतिम समय में अपने दो

शिष्यों को संत सद्गुरु की पदवी देने के लिए आज्ञा पत्र लिखे, एक स्वयं आप (अर्थात भाई साहब डाक्टर श्री कृष्णलाल साहब) के लिए और दूसरे हमारे पूज्य जयपुर वाले डाक्टर साहब (डा० कृष्ण स्वरूप साहब) के लिए। इन दोनों आज्ञा पत्रों को उन्होंने परम पूज्य सन्त सद्गुरु श्रीमान मौलवी अब्दुल ग़नी ख़ाँ साहब के पास (जो कि हमारे गुरुदेव के गुरु चचा थे) भूमिग्राम में, उनकी अनुमति के लिये भेज दिया।

इन परम पूज्य मौलवी साहब के पास ये दोनों आज्ञा पत्र रक्खे रहे। इधर हमारे गुरुदेव श्रीमान लाला जी महाराज ने (सन् 1931 में) महा समाधि ले ली। जब श्रीमान मौलवी साहब को इन आज्ञा पत्रों की याद आई तो पूज्य भाई साहब को पत्र द्वारा मिलने को बुलाया और दो बार दो-दो तीन-तीन दिन अपने पास रखकर वापिस लौटा दिया। सेवा में पहुँचे तो वे बहुत प्रसन्न होकर बोले "बरखुरदार ! तुम्हारे लिये यह इजाजत नामा मुझे मुन्शी जी (श्रीमान लाला जी महाराज) लिख कर दे गये थे, तुम इसे ले जाओ- मैं तस्दीक किये देता हूं।" और हस्ताक्षर करके हमारे पूज्य भाई साहब को प्रदान करके आशीर्वाद दिया।

इन्हीं दिनों श्रीमान मौलवी साहब कई बार जयपुर पधारे। हमारे इन डाक्टर साहब (पूज्य डाक्टर कृष्ण स्वरूप जी) को किस समय यह इजाजत नामा, तस्दीक करके दे गये, यह हमको पता नहीं, परन्तु वे इन्हें अवश्य ही यह अधिकार पत्र दे गये। हमारे पूज्य मौलवी साहब श्रीमान (पूज्य डाक्टर साहब) को राजस्थान (उस समय राजपूताना) और मालवा का 'कुतुब' कहा करते थे। क़ुतुब का अर्थ अध्यात्म का गर्वनर है। यह बात हमारे अध्यात्म के गुरुजनों को मालूम भी थी। इसलिए जब पूज्य भाई साहब परम सन्त डाक्टर चतुर्भुज सहाय जी सन् 1935 में जयपुर आये तो श्रीमान की सेवा में उपस्थित हो कर राजपूताना में आध्यात्म प्रचार करने की श्रीमान से आज्ञा चाही, जो आपने प्रदान की।

इजाज़त

सन् 1934 में एक बार श्रीमान का अजमेर से जयपुर पधारना हुआ और

हल्दियों के रास्ते में ठाकुर साहब साँथा की हवेली - में आप विराजे । हम सब सत्संग हेतु श्रीमान की सेवा में उपस्थित रहे । पहले ही दिन आपने दो नव-आगन्तुकों को अभ्यास बतलाने की मुझे आज्ञा दी कि इन्हें उस कमरे में ले जाओ और अभ्यास बतलाओ।

जहाँ तक मुझे उस समय जानकारी थी, नियमित रूप से आज्ञा दिये जाने पर ही कोई अभ्यासी दूसरों को अभ्यास बतलाने का अधिकार पाता था। मैं पुराने अभ्यासियों को तो अभ्यास कराया करता था, परन्तु नये व्यक्तियों को अभ्यास बतलाने का कार्य (मुझे आज्ञा न होने के कारण) मैं नहीं करता था और ऐसे नये आगन्तुकों को पूज्य भाई साहब ठाकुर रामसिंह जी के पास ही भेज देता था। यह उपर्युक्त आज्ञा पा कर, कि इन्हें अभ्यास बतलाऊँ, मैं तुरन्त ही आज्ञा पालन के लिये उठ गया और आदेश के अनुसार उन दोनों को अभ्यास बतलाया तथा करा कर श्रीमान के सामने लाकर बिठला दिया।

आज्ञा का पालन तो हो गया परन्तु मुझे यह आदेश अपनी अज्ञानता वश पच नहीं पाया और उसी रात्रि को श्रीमान चच्चा जी महाराज (परम सन्त महात्मा रघुवरदयाल साहब-कानपुर) की सेवा में लिख कर सब निवेदन कर दिया। उत्तर मिला, "मेरी ओर से भी इजाजत है। अब जो कोई भी अधिकारी अभ्यास सीखने आवे, उन्हें अभ्यास बतला और करवा दिया करो।"

अपने अभ्यास में आने वालों को, जिन्हें थोड़ा समय तथा अवसर पुराने अभ्यासियों के तथा गुरुओं के पास रहने का मिला है, मैंने इस 'इजाज़त' के लिये लालायित होते देखा है। चाहते हैं उन्हें भी किसी प्रकार गुरु बनने (छोटे ही सही) तथा शिष्य बनाने का अधिकार मिल जावे। याद रखिये कि हर अधिकार के साथ उत्तरदायित्व भी बंधा है। समय आने पर हर प्रकार का अधिकार अपने आप मिलता है। फिर मेरे विचार में तो यह सब अधिकार, तलवार की धार हैं। इनको पाने पर आप पर कितनी जिम्मेदारी आ जाती है ? यदि इसमें थोड़ी-सी चूक हो गयी तो उसकी सजा बहुत कड़ी है। अतः मैं तो इससे जब तक बचा रहा, अपने आपको आराम में तथा जिम्मेदारियों से मुक्त पाता रहा। अपना अभ्यास किया और

मस्त रहा। किसी दूसरे का कोई उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं।

यों तो अधिकार देने वाले गुरु उसके पालन तथा उपयोग की क्षमता भी साथ ही देते रहे हैं, परन्तु हम दुनियादार मनुष्यों में इतनी सावधानी कहाँ कि हम से चूक न हो। इसमें चूक का दण्ड करारा है और इसलिए मिलता है कि आप विश्वास लेकर आये हुए दूसरे सत्संगियों को भी अपनी गलतियों के कारण साथ में ले डूबते हैं और उन्हें पथ-भ्रष्ट करते हैं। स्वयं अकेले ही पथ-भ्रष्ट हों तो फिर भी कम हानि है। जो आपका सहारा लेकर चल रहा है उसे भी डुबा दें, यह बड़ा पाप है। उसे किसी ऐसे महापुरुष का सहारा दिलवाइये, जिससे डूबने का अवसर ही न आये।

सल्व करना

सन् 1956 के आरम्भ में एक दिन मैं श्रीमान के पास में बैठा था कि अचानक आपने मुझसे प्रश्न कर दिया, "बाबू हरनारायन ! तुम्हें सल्व करना आता है ?" मैंने उत्तर में केवल सिर झुका लिया। मुझे इसकी विधि पूर्णतया मालूम थी, परन्तु किसी गुरु पदवी के महात्मा ने मुझे इसका अधिकार नहीं दिया था। मैंने कई वरिष्ठ अभ्यासियों को तथा अध्यात्म के शिक्षकों को सल्व करते देखा भी था। अतः मैं यह तो कह नहीं सकता था कि मुझे नहीं मालूम। श्रीमान ने मेरा भाव तुरन्त पहिचान लिया और कहा "इसमें क्या है, ऐसे होता है (गर्दन घुमाकर) जब जरुरत समझो, कर लिया करो।"

सल्व करने का मतलब है कि किसी के शरीर से रोग अथवा कष्ट को निकाल देना। हमारे आध्यात्म में यह साधारण सी क्रिया है। परन्तु इस का खेल करना और दुनियाँ में यह दिखलाना कि देखो हम यह भी कर सकते हैं, इसकी कड़ी मनायी है। इस प्रयोग को अनुचित रूप से करने पर यह शक्ति जैसे दी जाती है, वैसे ही वापिस भी ली जाती है।

सन् 1958 में श्रीमान कुछ अस्वस्थ रहने लगे। उस समय आपके दोनों सुपुत्र जयपुर से बाहर ड्यूटी पर थे। अतः आपके इलाज आदि का भार मुझ पर आया। ऑफिस जाते समय आपका सारा विवरण लेता। फिर डाक्टर से कह कर

दवा लेता। ऑफिस पहुंच कर दवा श्रीमान के पास भेज देता। लौटते समय सीधा आपकी सेवा में उपस्थित होता। आप संध्या की चाय अधिकतर मेरे ही साथ पीते और प्रतीक्षा करते रहते।

एक बार जब ऑफिस से आपकी सेवा में पहुंचा आप कुछ अधिक अस्वस्थ होने के कारण अचेत से पड़े थे। मुझे तुरन्त याद आया कि में सल्व करने का अधिकार पा चुका हूं। तीन चार साँसे खेंचने पर ही आप में चेतना आ गई। पूछा, तुम कब से खड़े हो ? निवेदन किया, अभी आया हूँ। इस प्रकार मुझे कई बार श्रीमान के कष्ट का सल्व करना पड़ा। अब भी जब आवश्यकता होती है इस कार्य को कर लेता हूँ तथा श्रीमान की याद उस समय ऐसी आती है कि जैसे वे मेरे पास खड़े ही नहीं वरन् मुझ में समाये हुए हों और सल्व कर रहे हों।

राजगढ़ के बाबा जी

राजगढ़ अलवर स्टेट में (अब राजस्थान के एक ज़िले में) रेलवे लाइन पर एक उपनगर है। यहाँ परम संत श्रीमान डा० कृष्णस्वरूप जी के शिष्य श्री गंगाभारती जी एक बड़े मन्दिर के पुजारी का कार्य करते थे। ये सन्यासी के रूप में ही पहले कभी श्रीमान के पास आये थे। श्रीमान ने इन्हें आध्यात्म से सराबोर कर दिया। भारती जी ने देखा कि यह विद्या वैरागियों की नहीं वरन् गृहस्थों की है तो उन्होंने श्रीमान से पूछा कि यदि आवश्यक हो तो मैं यह बाना बदल लूं और गृहस्थ बन जाऊं। श्रीमान ने आपको इसी भेष में रहकर सन्यासियों में भी इसका प्रचार करने की आज्ञा दी। भारती जी इस भेष में अपने शरीरान्त तक इस आज्ञा का पालन करते रहे। सन्यासी समाज में आपके इस नये प्रकार के आध्यात्म के प्रति बड़ा आदर है। अभी सन 1977 में ही आप (बाबा जी) का 92 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हुआ। सन 1940 में एक बार श्रीमान के साथ हम भी राजगढ़ गये। एक पंडित जी भी हमारे साथ गये। बाबा जी का व्यवसाय तो रहा मन्दिर की पूजा और हमारे इस आध्यात्म में मूर्ति पूजा के लिए कोई स्थान ही नहीं था, वे उसे छोड़ भी नहीं सकते थे। श्रीमान की आज्ञा से वे मन्दिर की पूजा इस प्रकार करते थे जैसे हम सब गवर्नमेन्ट की नौकरी, दुकान, वकालत, डाक्टरी आदि करते है तथा आध्यात्म

का अभ्यास तथा प्रचार उनका निजी कार्य था। यह अद्भुत समन्वय हमने और कहीं नहीं देखा। श्रीमान के साथ गृहस्थ अनुरूप हमारा भी स्वागत तथा सेवा सुश्रुषा हुई। बाबा जी आयु में श्रीमान से बड़े थे, परन्तु हर समय सेवा में ऐसे खड़े रहते थे कि हमें तो अपने सामने उनको सन्यासी भेष में इस प्रकार अपने आप को प्रस्तुत करते देख लज्जा अनुभव होती थी।

श्री किशन

बहुत से पुलिस कर्मचारी आपकी सेवा में सत्संग के लिए आते थे। यह जब इस विभाग के कर्मचारियों पर भाई साहब श्रीमान ठा० रामसिंह जी और बाद में उनके साथ-साथ सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब ठाकुर मूलसिंह जी के शुभ प्रभाव के कारण ही था। अन्यथा इस विभाग के कर्मचारियों का मार्ग (आचरण) थोड़ा अन्य प्रकार का ही देखा गया है। इन्हीं लोगों में एक कान्स्टेबिल श्री किशन नाम का भी आपके पास आया करता था। श्री किशन के संस्कार कुछ अच्छे थे। अतः थोड़े दिनों में ही इसका अभ्यास परिपक्व हो गया तथा समाधि की अवस्था सहज में ही आने लगी।

सन् 1940 के पहले की बात है। उन दिनों श्री किशन की ड्यूटी पुलिस लाइन में थी। प्रातः काल ही परेड होती, उसमें लाइन वालों की उपस्थिति अनिवार्य होती। यह श्री किशन भी नित्य प्रति समय पर जाता। एक दिन प्रातः जो पूजा ध्यान में बैठा तो ऐसी समाधि लगी कि धूप निकल आई और परेड आदि समाप्त होने के बाद ही आँख खुली। श्री किशन मन में घबराया कि आज की अनुपस्थिति का दण्ड भोगना पड़ेगा-क्या हो कितना हो ? पर चूक हो गई, उसके लिए अब कुछ नहीं हो सकता था। वह डरते-डरते अपने साथियों से कह रहा था कि आज परेड चूक गया, जाने क्या और कितना दण्ड मिलेगा। साथियों ने व्यंग किया, आज तूने कितनी भांग पी, जो बहकी-बहकी बातें कर रहा है ? हमारे साथ परेड की, और कहता है मुझसे चूक हो गई। श्री किशन को कैसे विश्वास होता। उसने अपने हवलदार के पास जाकर रजिस्टर में अपनी उपस्थिति भी देखी और अचम्भे में पड़ गया। अपनी बैरक में आकर बड़ी देर तक इसी विषय पर सोचता और रोता रहा। अन्त में निर्णय लिया कि मुझे ऐसी नौकरी ही नहीं करनी जिसमें

मेरे गुरु भगवान को नौकरी देनी पड़े। नौकरी से त्यागपत्र लिखा, कार्यालय में दिया और वहां से चल दिया। साथियों ने तथा अन्य वरिष्ठ कर्मचारियों ने समझाने की चेष्टा की परन्तु श्री कृष्ण का निर्णय नहीं बदला। वह तो अपने गुरुदेव का अपने स्थान पर नौकरी करना, किसी भाँति भी सहन (बरदाश्त) नहीं कर सकता था।

जब किसी प्रकार भी श्री किशन को नौकरी करते रहने को नहीं मनाया जा सका तो पुलिस अधिकारियों ने प्रयत्न करके श्री किशन की पेन्शन करा दी जो उस समय केवल चार रुपये मासिक थी, वह अब 300 रुपये मासिक हो गई है। श्री किशन ने उसके बाद कोई नौकरी नहीं की। अपने गांव 'सेंतीवास' चला गया जो अब तहसील टोडाराय सिंह जिला टौंक में है। अब भी वह हमारे पास और गुरु महाराज के परिवार के सदस्यों के पास आता रहता है। ऐसे प्रेमी भक्त कम ही देखने में आते हैं। गुरु कृपा का महत्व भी ऐसे ही लोगों में देखने को मिलता है। सन् 1968 के बाद वह नहीं आया सम्भवतः अब वह नहीं है।

सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब

हमारे यहाँ, जयपुर में एक ठाकुर साहब मूलसिंह जी कई वर्षों जयपुर में स्टेट के समय में पुलिस विभाग में सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब रहे थे, अपने आरंभिक जीवन में ये बड़े कठोर (सख्त) प्रकार के पुलिस ऑफिसर कहे जाते थे। उन्होंने स्वयं ही हमें बतलाया था कि सन् 1929 में जब श्रीमान लाला जी महाराज का इधर पधारना हुआ, उस समय पूज्य भाई साहब ठाकुर रामसिंह जी ने इनसे निवेदन किया कि गुरु महाराज पधारे हैं, आप भी दर्शन कर लीजिए। उत्तर मिला कि उन्हें मेरे दर्शन के लिये जब आपको सुविधा हो तब ले आना। भाई साहब ठा० रामसिंह जी उनके इस कटु उत्तर को सुन कुछ न कह कर चुप हो गये। गुरुदेव (श्रीमान लाला जी महाराज) के निर्वाण के भी कुछ वर्षों पीछे इन्हीं ठाकुर साहब मूलसिंह जी को इस आध्यात्म की ऐसी लगन लगी कि भाई साहब ठाकुर रामसिंह जी के पास आकर बड़ा पश्चाताप किया और बोले, "मुझे तो आप ही अभ्यास बतलाइये वह अनमोल अवसर तो मैंने दुर्भाग्यवश खो दिया, अब मुझे आप सही रास्ता बतलाइये।"

सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब, ठाकुर मूलसिंह जी ने स्वयं मुझे यह सारी बातें बतलाई और वे सदा ही हमारे गुरुदेव के प्रति अपने इस व्यवहार के लिये लज्जित होते रहे। आपका एक और कथन हम सब को नोट कर लेने योग्य है कि "हम खूब गोश्त खाते शराब पीते थे और यह समझते थे कि ऊपर की आमदनी न हो तो कैसे परिवार का निर्वाह होगा ? परन्तु इस सत्संग में आ जाने के पश्चात यह सारी बातें छोड़ देने पर भी हम देखते हैं कि हम पहले से कहीं अधिक प्रसन्न तथा सुखी हैं। आराम से हमारा निर्वाह उसी वेतन में हो जाता है।"

इन ठाकुर साहब मूलसिंह जी (जिनकी हमारे पूज्य डाक्टर साहब को अजमेर से लाने और जयपुर में बसाने में प्रमुख भूमिका थी) ने पूज्य डाक्टर साहब की बड़ी सेवा की। आध्यात्म मार्ग में श्रीमान ने भी उन की पर्याप्त सहायता की, यहाँ तक कि इन्हें अभ्यास आदि बतलाने की भी आज्ञा दे दी। हमने ठाकुर साहब को उनके अन्तिम महीनों में भी देखा। वे अपने ध्यान में ऐसे मस्त रहते थे कि उन्हें महात्मा कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। अवश्य ही इन्हें हमारे श्रीमान पूज्य डाक्टर साहब ने पूर्ण कर दिया था।

भोजन

एक बार श्रीमान के परिवार के साथ मैं भी सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब ठा० मूलसिंह जी के ग्राम महरौली गया। गुरु महाराज के साथ गये थे तो सब ही की आवभगत हुई। जब खाना आया तो एक बहुत बड़ा थाल था उसमें कटोरों में रसेदार साग आदि और एक चार इंच ऊँची रोटियों की जेट थी। रोटी जमा कर रखने को राजस्थान में जेट कहते हैं। खाना आरम्भ भी नहीं किया था कि उस पर उनका नौकर दो इंच की मोटी जेट फिर रख गया। जब वह नौकर तीसरी बार रोटी की जेट परोसने को लाया तो हम उस पहले लाई जेट में से एक दो ही रोटी खा पाये थे। उसको परोसने से मना किया। इतने में सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब आ गये। बोले, "रोटी क्यों वापस ले जाता है, थाल में परोसता क्यों नहीं ?" और वह रोटी परोस ही गया। सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब ने बताया "आपके लिये ऊपर की गरम रोटी है, बाकी छोड़ दीजिए। उस बची रोटी को खाने वाले बहुत इन्तजार में हैं। हमारे यहाँ के

नौकर लोग तो यही खाते हैं।"

श्रीमान ने उन्हें स्पष्ट कह दिया कि हम तो खाना खाते समय जूठन नहीं छोड़ते। अतः हमारे खाने के समय उसी प्रकार परोसगारी होना चाहिए अर्थात् जितना हमें आवश्यक हो उतना परोसा जाय।

एक बार परोसगारी में मांस का पुलाव आया। वहाँ लोगों को मालूम था कि श्रीमान मांस नहीं खाते हैं, अतः उसमें से गोश्त के टुकड़े निकाल कर साफ करके परोसा गया था, परन्तु मांस न खाने वालों को तो उसकी हीक (गंध) भी अच्छी नहीं लगती। तुरन्त पहचान में आ गया।

न्योता

वहाँ श्रीमान के साथ हम सब यह भी विचार करने लगे कि हम विवाह में आये हैं, राजस्थान में न्योते के रुपये देने की प्रथा है। अतः हमें यहाँ कुछ देना चाहिये और यह बात सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब से कहने के लिये मुझे ही आज्ञा हुई। जब हमारे पास बड़ी फुर्सत से बैठे वे बात कर रहे थे तो सुअवसर जान कर मैंने यह बात छेड़ दी। सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब ने उत्तर दिया। "गुरु महाराज तो हमारे पिता हैं, इनका तो घर है, इनका काहे का न्योता ? यदि आप दें तो हम स्वीकार करेंगे। "मैंने तुरन्त कुछ रुपये निकाल कर पेश किये और आपने ले लिये। मैं समझा यह बात ठीक हुई। परन्तु सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब कहीं अधिक व्यवहार कुशल थे। आपने अपनी जेब से कुछ रुपये और निकाले और उन रुपयों में मिलाकर मेरी ओर बढ़ा दिये। मैंने कहा यह क्या ? तो आपने उत्तर दिया "आपने गुरु महाराज के यहाँ तोरण मारा है। (राजस्थान में विवाह के पूर्व वर-वधु के घर पहुंच कर एक रस्म अदा करता है उसे तोरण मारना कहते है) तो हम आपका न्योता मंजूर तो करते हैं। परन्तु रख नहीं सकते। अतः यह स्वीकार कीजिये।" मुझे शर्म तो आई कि ऐसी बात ही क्यों छेड़ी, परन्तु अपने कथन पर विवश था। अतः रुपये लेने पड़े। श्रीमान भी इसको देखकर खूब हँसे कि सोचा क्या था, क्या चक्कर पड़ गया।

सन्त वाणी संग्रह

श्रीमान की एक आदत थी कोई अच्छी बात, कहानी, कविता आदि कहीं मिली या आपके अपने मस्तिष्क में आई तो समय निकाल कर उसे लिख लेते थे। उनके जीवन काल में हस्त लिखित ये सब छोटे-छोटे लेख (Tracts) छप नहीं पाये थे। श्रीमान कभी-कभी इन्हें पढ़ कर सब को अभ्यास के समय या अतिरिक्त समय में सुनाया करते थे। श्रीमान के निर्वाण के कई वर्ष पश्चात हमारे भाई साहब आचार्य, श्रीमान छगनलाल जी अवकाश प्राप्त न्यायाधीश (Retd. Distt. & Sessions Judge) मध्य प्रदेश ने इनमें से बहुत से लेखों का संग्रह करके पुस्तक रूप दिया, जो "संतवाणी संग्रह भाग 1" के नाम से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में श्रीमान के द्वारा आध्यात्म के कई गूढ़ तत्व सरल भाषा में समझाये गये हैं।

फ़क़ीरों की सात मंज़िलें

आपने एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम "फ़क़ीरों की सात मंज़िलें" हैं। यह पुस्तक आपने उन दिनों में लिखी जब आपकी दृष्टि मन्द हो रही थी। मोतिया-बिन्दु बढ़ गया था। इन्हीं दिनों हमारे पूज्य भाई साहब परमसन्त डाक्टर श्रीकृष्ण लाल जी भी जयपुर दो बार पधारे तो श्रीमान ने यह पुस्तक उन्हें दिखलाई और अपनी विवशता भी बतलाई कि इसे दुबारा पढ़ कर छूटी हुई किसी बात को पूरा करने में दृष्टि के कारण कुछ असमर्थता आ गई है। श्रीमान भाई साहब आपसे इस पुस्तक को ले गये और फिर इसको प्रकाशित किया। इस पुस्तिका में भी हमारे इस आध्यात्म के लिए सरल शब्दों में मार्ग दर्शन किया गया है। रामाश्रम सत्संग सिकन्दराबाद-गाजियाबाद से प्रकाशित यह पुस्तक अभ्यासियों के बहुत काम की है।

मेरी समझ में जो गूढ़ तत्व इसमें तथा अन्य सन्तों की पुस्तकों, कविताओं, साखियों आदि में लिखे गये हैं, उनका बहुतेरा अंश सर्व साधारण की समझ में पूरी तरह नहीं आता। कारण यह है कि आध्यात्म की उस स्थिति या स्टेज तक की बात तो जहां हम अपने अभ्यास तथा गुरु कृपा द्वारा पहुँचे हैं, समझ

में आती है, आगे की बात नहीं समझ पाते।

हमारे भाई साहब परमसन्त डा० श्री कृष्णलाल जी ने घट मार्ग नाम की पुस्तक में परमसन्त श्री कबीर साहब की साखी की व्याख्या की है। वे सभी स्थितियों को देखे और समझे हुए थे। इस कारण उस गूढ़ अटपटी भाषा को साधारण भाषा में लिख दिया। अब उस साधारण सरल भाषा को पढ़ कर भी हम थोड़ा बहुत ही समझ पाते हैं। बहुत सा मामला उसमें ऐसा अब भी है जिसे मुझ जैसे पिछड़े हुए अभ्यासी को तो भय है कि इस जन्म में समझने योग्य हो सकूंगा अथवा नहीं ?

भगवान कृष्ण की भगवद्गीता सब पढ़ते हैं। विदेशों में भी इस महती पुस्तक के अनुवाद छपे हैं। सभी विद्वान इसके गूढ़ सूत्रों को सरल भाषा में अनुवाद कर सकते और करते हैं। परन्तु उन्हें समझ कितने पाते हैं, यह सब सोचने का ही विषय है, विवाद करने का नहीं।

शान्ति प्रार्थना

श्रीमान के बारे में एक बार श्रीमान महात्मा डाक्टर श्यामलाल जी (गाजियाबाद) ने बतलाया कि आप बहुत उच्च कोटि के सन्त थे। बतलाते थे कि अपनी परम्परा के सन्तों की आत्मिक शान्ति के लिए प्रार्थना करते समय इनके लिये भी विशेष रूप से किया करते थे।

एक रात्रि को आपने स्वप्न दिया। बहुत प्रसन्न थे और श्रीमान भाई साहब को आशीर्वाद दिया।

हमें उन सभी सन्तों की पवित्रात्माओं के लिए शान्ति की प्रार्थना करनी चाहिए जो हमारी परम्परा के हैं तथा उनके लिए विशेष जिन्हें हम जानते हैं अथवा जिनसे हमारा सम्पर्क रहा है। इससे यथेष्ट लाभ मिलता है।

मूर्ति पूजा

अजमेर में एक सज्जन कट्टर आर्य समाजी आपके सम्पर्क में आये। वे एक बार मूर्ति पूजा के खण्डन में बड़ी-बड़ी दलीलें दे रहे थे। जब वे बहुत बोल चुके तो आपने कहा कि मूर्ति पूजा किसी न किसी रूप में सभी करते हैं। वे सज्जन बड़ी दृढ़ता से कह रहे थे कि वे मूर्ति पूजा किसी भी रूप में नहीं करते। आपने फरमाया हम आप को बतला देंगे।

आप प्रातःकाल टहलने जाया करते थे। एक प्रातः आपको उन सज्जन की याद आ गई और उनके घर पहुँच गये। बाहर बैठक के कमरे में कुछ चित्र टंगे थे। जिनमें स्वामी दयानन्द जी का चित्र भी था। उन सज्जन के देखते-देखते आपने वह चित्र उतार लिया और उसे फ़र्श पर डाल दिया और ऐसा उपक्रम करने लगे जैसे उस चित्र पर जूता वाला पैर रख रहे हों।

वे सज्जन ये देखकर घबड़ा गये और खड़े होकर उस चित्र को उठाने को दौड़े, "बोले यह महर्षि स्वामी दयानन्द जी का चित्र है आप यह क्या कर रहे हैं" कहते-कहते उन्होंने वह चित्र झपट कर उठा लिया।

आपने कहा "क्यों साहब ! ये चित्र पूजा भी क्या मूर्ति पूजा से भिन्न है ?" उन साहब को कोई उत्तर देते नहीं बना।

यादें

संस्मरण - (भाग 5)
परम पूज्य भाई साहब श्रीमान ठाकुर रामसिंह जी

निवासी ग्राम मनोहरपुरा, तहसील साँगानेर, जिला जयपुर

परिचय

महात्मा ठाकुर साहब श्रीमान रामसिंह जी हमारे श्रीमान लालाजी महाराज के अतिप्रिय शिष्यों में थे। आपके निष्कपट प्रेम भाव आधीनता नम्र तथा सरल मृदु स्वभाव से हमारे गुरुदेव अत्यन्त प्रसन्न थे। आपकी विशेषता यह थी कि आपने पुलिस जैसे विभाग, जिसमें किसी भी सीधे सच्चे मनुष्य का निर्वाह कठिन ही नहीं-असंभव होता था, और अब भी है, के कर्मचारी होते हुए, आध्यात्म में उच्चतम स्थान प्राप्त किया तथा साथ ही साथ पुलिस विभाग का कार्य भी पूर्ण निष्ठा तथा कुशलता से पूरा करके सेवा निवृत्त हुए और बहुत वर्षों तक पेन्शन पाते रहे।

आपका जन्म आपके पैत्रिक स्थान ग्राम मनोहरपुरा, तहसील साँगानेर, जिला जयपुर में ता॰ 3 सितम्बर 1898 को हुआ। आपके पिता पूज्य श्रीमान ठाकुर मंगल सिंह जी भाटी जयपुर राज्य सेवा में किलेदार के पद पर कार्य करते थे। स्टेट के अनेकों किलों पर आपने किलेदार के पद पर कार्य किया। घर में बहुत-सी खेती की भूमि थी जिससे निर्वाह के लिये पर्याप्त धान्य मिल जाता था। जब वे ड्यूटी पर रहते तो अकेले ही रहते, परिवार के शेष सदस्य घर पर ही अपने ग्राम में रहते। हमारे पूज्य भाई साहब भी इसी प्रकार ड्यूटी पर अकेले ही रहते तथा परिवार के अन्य सदस्य ग्राम में रहते।

परमसन्त ठाकुर श्री रामसिंहजी

जन्म-शनिवार 3 सितम्बर, 1898
निर्वाण-मकर संक्रान्ति 14 जनवरी 1971

आरम्भ में ही आप पुलिस विभाग की सेवा में आ गये। सन् 1929 में जब हमारा परिचय आपसे हुआ तब आप निवाई में हैड कान्स्टेबिल के पद पर कार्य कर रहे थे। संस्कारी पुरुष थे अतः आरम्भ में ही आपका परिचय जयपुर के पीर साहब हकीम जनाब हजरत हिदायत अली साहब से हुआ जो एक सूफी संत थे। फिर जब

आपने हमारे गुरुदेव श्रीमान लाला जी महाराज का फोटो भाई साहब श्रीमान बाबू कृष्णचन्द्र जी भार्गव (पी॰ डब्लू॰ आई॰ निवाई) के पास देखा तो आप उनकी ओर अनायास ही आकर्षित हो गये। उनके द्वारा दीक्षित होने पर आपकी प्रतिभा खुली और इस मार्ग में ऐसे अग्रसर हुए कि एक उदाहरण बन गये।

भाई साहब श्रीमान बाबू कृष्णचन्द्र जी भार्गव (पी॰ डब्लू॰ आई॰ निवाई) के पास देखा तो आप उनकी ओर अनायास ही आकर्षित हो गये। उनके द्वारा दीक्षित होने पर आपकी प्रतिभा खुली और इस मार्ग में ऐसे अग्रसर हुए कि एक उदाहरण बन गये।

सब इन्सपेक्टर के पद से आपने समय से थोड़ा पहले ही 3-9-1944 से पेन्शन ले ली। आपने जयपुर महाराज के हाउस होल्ड विभाग में कुछ समय कार्य किया। फिर सब कुछ छोड़कर आप सिटी पैलेस में अन्त समय तक रहे। आपके सुपुत्र श्रीमान हरिसिंह जी महाराजा जयपुर हाउस होल्ड में एकाउन्टेन्ट उन्हें यह स्थान रहने के लिये मिला हुआ था। आप यहीं रह कर अन्त समय तक गुरुदेव के आध्यात्म का प्रचार करते रहे।

आपका प्रेम भाव तथा आध्यात्म की शिक्षा का तरीका ऐसा सरल तथा प्रभावशाली था कि आपके पास आने वाले सत्संगी भाइयों की शीघ्र ही अच्छी उन्नति हो जाती थी। इनमें से कई अच्छे-अच्छे अभ्यासी हैं जिनमें एक आपके सुपुत्र श्री नारायण सिंह जी भी हैं जो फतेहगढ़ भण्डारे में भी प्रतिवर्ष जाते हैं।

आप आरम्भ से ही कृष-तनु थे। परन्तु स्वास्थ्य में कोई विकार नहीं था। अन्त समय के कुछ वर्ष पहले आप अधिक अस्वस्थ रहे। आपको कुछ समय टी॰बी॰ सेनेटोरियम में भी रहना पड़ा। अन्त में मकरसंक्रांति 14-1-1971 को

आप इस पार्थिव शरीर को छोड़ कर अपने प्रियतम में समा गये।

आपकी बोली में इतनी मिठास तथा कोमलता थी कि जिससे भी आप बातें करते आपकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। आपके ही विभाग के वे अपराधी जिन्हें आपके हाथों पकड़े जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, आपकी सेवा भाव की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। इनमें से किसी पर भी तथा अन्य प्रजाजनों पर भी, आपने कभी कठोरता का व्यवहार नहीं किया। आप जिस पुलिस थाने में भी रहते, वहां आसपास के जन-साधारण आप के द्वारा रक्षा तथा सहायता का विश्वास रखते तथा निडर होकर अपनी सारी बातें आपसे कह जाते।

दर्शन

आपका पहले निवाई स्टेशन पर भाई साहब श्रीमान बाबू कृष्णचन्द्र जी भार्गव से सम्पर्क हुआ जो उस समय पी॰ डब्लू, आई॰ के पद पर नियुक्त थे। श्री भार्गव, श्रीमान लाला जी महाराज के पुराने शिष्य थे। उन से ही आपको गुरुदेव के विषय में जानकारी हुई और गुरुदेव का मात्र फोटो देखकर आप इतने आकर्षित हए कि आपने पत्र द्वारा गुरुदेव को दर्शन देने की प्रार्थना की। गुरुदेव ने आपकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और आपके पास बांदीकुई रेलवे स्टेशन पहुँच कर दर्शन दिये। यह बात 1928 की है। आप गुरुदेव को जयपुर लाये और वहीं कई दिन तक गुरुदेव के साथ रहे। संस्कारी पुरुष तो आप थे ही, गुरुदेव की पूर्ण कृपा आपको उसी समय मिल गई और फिर सदा ही मिलती रही।

हमें आप बहुधा बतलाया करते थे कि "मेरी नालायकी में तो कसर नहीं कि मैं गुरुदेव के पास स्वयं तो गया नहीं और उनसे दर्शन देने की प्रार्थना की, किन्तु उनकी इतनी दया व कृपा हुई कि मुझ नालायक को घर पधार कर दर्शन दिये और फिर दीन-दुनियाँ सब कुछ दे डाला।" ये श्रीमान ठाकुर साहब के ही शब्द हैं।

आपके घनिष्ठ मित्र ठाकुर साहब ठिकाना साँथा का भी आपने गुरु देव से परिचय कराया और उन्हें तथा उनके साथ कई भाइयों को आध्यात्म के मार्ग में अग्रसर किया। इसमें बहुत से पुलिस विभाग के कर्मचारी थे।

पुलिस सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब

उन्हीं दिनों एक पुलिस ऑफिसर ठाकुर मूलसिंह जी से आपका घनिष्ठ संबंध था जो उस समय जयपुर में डी॰ एस॰ पी॰ थे। आपने उनसे भी गुरुदेव के दर्शन का आग्रह किया। ये ठाकुर साहब उन दिनों अपने आप में ही मस्त और माँस मदिरा आदि के सेवन में पूर्ण आस्था रखते थे, दर्शनों के लिये नहीं आये। परन्तु उन पर कुछ प्रभाव गुरुदेव तथा आपका ऐसा पड़ा कि कुछ ही समय पीछे वे पलटे और आपके पास पहुँच कर अपने आपको अभ्यास के लिये प्रस्तुत किया। आपने गुरुदेव के पास उनकी शरण में जाने के लिए कहा परन्तु ठाकुर साहब को इतना सन्तोष करना कठिन हो गया और आग्रह करके आपसे ही अभ्यास सीख लिया। तदनंतर ठाकुर साहब भी एक आदर्श अभ्यासी हुए। इनका वृतान्त भी संभव हो सका तो आपकी सेवा में प्रस्तुत करेंगे। कुछ तो पीछे के अध्याय में लिख ही चुके हैं।

श्रद्धा विश्वास

आपकी आस्था और गुरुदेव के प्रति श्रद्धा विश्वास असाधारण था। हमने ऐसा आदर्श अपने जीवन में केवल एक ही और देखा है। वह है श्रीमान पूज्य महात्मा शिवनारायण दास जी गाँधी का। उत्तर प्रदेश के तथा अन्य हमारे सत्संगी भाई उनसे भी पूर्ण रूप से परिचित हैं। इन्होंने भी हमारे भाई साहब श्रीमान ठा॰ रामसिंह जी के समान आध्यात्म का एक ऐसा उच्च आदर्श प्रस्तुत किया कि जिसकी मिसाल ढूंढने पर भी नहीं मिलती। हो सका तो इन गाँधी जी का भी विवरण कभी आपकी सेवा में प्रस्तुत करेंगे। इनके विषय में यादें भाग 2 में आपको जानकारी मिलेगी।

हमारे ठाकुर साहब श्रीमान महात्मा रामसिंह जी को अपने गुरुदेव में ऐसा अटूट तथा दृढ़ विश्वास था कि उनकी हर बात में, हर कार्य में हर समय उसकी झलक स्पष्ट रूप से मिलती थी। आपका कहना था, "मैं पुलिस विभाग के लिये एक अत्यन्त अकुशल अयोग्य तथा निकम्मा कर्मचारी अन्त तक रहा, फिर भी गुरुदेव

की कृपा से सारे कार्य ठीक-ठाक होते रहे तथा कई कार्य ऐसे भी हुए जो असम्भव से थे, असाधारण थे। यह सब गुरु भगवान की ही दया थी और हर समय रहती है।" हमें आपने अपनी इस प्रकार की कई घटनायें सुनाई, जिनसे आपके इन सारे कथन की पुष्टि होती है। उन्हें हम आपकी सेवा में प्रस्तुत करना चाहते हैं।

डाकुओं के घर में

आप एक बार चार ऊंट और तीन सिपाही लेकर डाकुओं के एक झुण्ड (गिरोह) को पकड़ने चल पड़े। उन डाकुओं का गांव में होने का समाचार आपको मिल चुका था। गांव में पहुँचे, डाकुओं के घर पहुँचे और उनके घर में घुस गये। इस प्रकार निर्भयता से घुसते देख डाकू घबड़ा गये और इधर-उधर छुपने और बचने का प्रयास करने लगे। एक डाकू जिसे आपने पहचान लिया था, जब भागा तो आप उसके पीछे दौड़े। वह एक खिड़की में से बाहर कूद गया, परन्तु आपके हाथ में जो डंडा था उसका वार खिड़की पर रक्खी डाकू की कलाई पर ऐसे जोर का पड़ा कि उसका वह सीधा हाथ सदा के लिए बेकार हो गया। यह एक डाकू चोट खा कर भी भागने में सफल हो गया। दूसरे डाकू अर्जुना को आपने भूसे की टोकरी के नीचे छुपा हुआ पकड़ा। उसके एक दो हाथ ही पड़ पाये थे कि बोल गया "आपकी गाय हूं मत मारो।" इसी प्रकार तीन और डाकू आपने पकड़े और इन चारों की मश्क़ें बाँध ली। फिर उन चारों को ऊँटों पर बांधा और थाने में लाकर बन्द कर दिया।

थाने पहुंच कर आपने और इन डाकुओं का भोजन बनाया। पहले उन डाकुओं को खिलाया, फिर स्वयं खाया। जब अवकाश मिला उन डाकुओं से बात करने बैठ गये। आपको इस समय यह ध्यान हुआ कि आपने कैसा भयानक काम किया ? केवल चार पुलिस कर्मचारी, डाकुओं के ग्राम में घुस गए, घर में घुस गये और डाकुओं को पकड़ भी लाए। आपने डाकुओं से पूछा "क्यों भाई, आप सब अपनी जान पर खेलने वाले निर्भीक डाकू कहे जाते हैं, आप में ऐसी क्या निर्बलता आ गई जो हम चार पुलिस कर्मचारी आपके घर में से आप लोगों को पकड़ लाये ?" डाकुओं ने उत्तर दिया, "आप चार थे कि चार सौ ? हमें तो हर ओर पुलिस ही पुलिस दिख रही थी और हम इस तरह से घिर गये थे कि सिवाय अपने आपको

पुलिस को समर्पण कर दें, और कोई बात समझ में ही नहीं आ रही थी। नाके-नाके पर पुलिस के सिपाही खड़े दिख रहे थे।"

आप यह घटना हमें सुना रहे थे कि प्रेम की अश्रु धारा आँखों से निकल पड़ी। बोले "ये नाचीज किस योग्य है ! केवल गुरु भगवान के आसरे पर निर्भर है, वे किस प्रकार हर समय कैसी-कैसी सहायता करते हैं, बुद्धि से समझ में नहीं आ सकती" और कहते-कहते प्रेम विभोर हो गये। हमारी भी वैसी ही दशा हो गई और यह घटना पढ़ने पर फिर वैसी ही हो जाती है।

गुरु भगवान

गुरुदेव को आप सदा ही "गुरु भगवान" कहा करते थे। आपका विश्वास तथा श्रद्धा गुरुदेव में निश्चय रूप से ऐसी ही थी कि वे गुरु को भगवान ही मानते थे। कहा करते थे, कि "मेरे सारे काम गुरु भगवान की केवल दया मात्र से ही होते हैं। मैं पुलिस के विभाग के लिए सर्वथा अयोग्य हूं।"

आपके मुख से कभी गाली अथवा अपशब्द हमने नहीं सुने। आपको क्रोध में भी कभी नहीं देखा। आपको सदा ही विनम्र भाव में पाया। अपने आपको छोटा ही नहीं समझते थे परन्तु व्यवहार में भी ऐसा करते थे। यदि आपका ध्यान दूसरी ओर होता और आपके कोई चरण छू लेता तो आप लौट कर उसके चरण अवश्य छूते।

अपना कार्य

वे यथा संभव अपना कार्य स्वयं ही करते। अपना बिस्तर अथवा अन्य सामान किसी अन्य, यहाँ तक कि अपने थाने के सिपाही को भी उठाने नहीं देते। स्वयं ही उठाते। कभी अवसर मिलता तो दूसरों का समान भी आप उठा लेते। अधिकतर तो आप पैदल चलते परन्तु यदि किसी रिक्शा ताँगा आदि में बैठते तो उसके स्वामी को पहले कहते कि हम उस स्थान को जावेंगे तथा इतना पैसा देंगे। आपका बताया हुआ पैसा साधारण किराये से अधिक होता था और रिक्शे ताँगे

वाले प्रसन्न होकर इनको यथा-स्थान पहुंचा देते। वैसे तो पुलिस वालों से ये सब डरते हैं और कुछ भी पैसा मिलने की आशा नहीं रखते, न मांगने का साहस रखते है।

भोजन

अपना भोजन आप स्वयं ही बनाते, किसी सिपाही अथवा किसी भी अन्य व्यक्ति को बनाने नहीं देते। ऐसे भी अवसर आते जब आपको भोजन बनाने का अवकाश नहीं मिलता तो आप अधिकतर भुने हुए चने खा कर जल पी लेते। कभी-कभी कई दिन तक इसी प्रकार एक दो समय भूखे ही रह जाते थे अथवा चने आदि खा लेते। आपको कभी सार्वजनिक प्याऊ अथवा किसी के द्वारा जल पीना पड़ता तो उसे अवश्य ही कुछ पैसे देते। कभी कोई खोटा, पैसा, रेज़गारी, नकली या खोटी आपके पास आ जाती तो उसे कुएं में डाल देते।

आपका घर, जहां आपका परिवार (अब भी) रहता है, जयपुर नगर से लगभग नौ मील दूर है। ग्राम का नाम मनोहरपुरा है। जयपुर स्टेट के समय में अधिकतर क्रिमिनल कोर्ट्स जयपुर नगर में थीं, और आपको अपराधियों को कोर्ट में उपस्थित करने और बयान आदि दिलाने का कार्य करना पड़ता था। अपने अधिकारियों की अनुमति से कोर्ट के समय के बाद अपने घर चले जाते। उस दिन का दैनिक भत्ता (Daily allowance) आप बिल में नहीं लगाते। रेल का समय होता तो रेल से अथवा अधिकतर पैदल ही यह नौ मील चल लेते और दूसरे दिन कोर्ट के समय से पहले ही पहुंच जाते।

दान

आप अपने वेतन का बहुत सा भाग दान में देते और ऐसे लोगों को देते जो माँग भी नहीं सकते थे। केवल थोड़ा-सा अपनी आवश्यकताओं के लिए रखते। ड्यूटी पर आप सदा अकेले ही रहते। परिवार के सदस्य सब ग्राम में ही रहते। आपके पिता किलेदार थे। हमने उनके भी दर्शन किये हैं। वे भी तीस मील दूर

अपनी ड्यूटी के स्थान से पैदल ही आ जाते। घर में काश्त बहुत सी थी। इससे खाने के लिए पर्याप्त अन्न प्राप्त हो जाता था। आप अपने खाने के लिए आटा-दाल आदि घर से ही ले आते थे और स्वयं भोजन पकाते, अपने साथ वालों को तथा हवालात में बन्द कैदियों को खिलाते, फिर स्वयं खाते थे।

अपराधियों के साथ व्यवहार

आपने स्वयं हमें बतलाया कि पुलिस में आप जिन अपराधियों को पकड़ते तथा जाँच पड़ताल (तफ्तीश) के बाद कोर्ट में पेश करते तो वे सही-सही बयान देते। न तो ये ही कोई असत्य आरोप उन पर लगाते और न ही वे अपने बयान में कोई फेर बदल करते। यह सब गुरु भगवान की दया थी। उनके थाने में किसी अपराधी अथवा अन्य आगन्तुक का न कभी गाली दी जाती न कोई मारपीट या अन्य प्रकार का कठोर व्यवहार किया जाता था। उनके पकड़े अपराधी स्वयं ही ये बातें जानते थे, उन्हें किसी प्रकार का भय अथवा आशंका नहीं रहती थी। आपके संरक्षण (हिफाजत) से कभी कोई अपराधी नहीं भागा, न उसने कभी भागने का विचार ही किया।

एक संगीन मुक़द्दमा चन्दवाजी

एक समय आप थाना चन्दवाजी में सब इन्सपेक्टर इन्चार्ज थे। यह स्थान आमेर से उत्तर दिल्ली रोड पर स्थित है। वहाँ एक पुराना ठिकाना राजपूतों का है, जो गढ़ में रहते हैं, और बाहर एक छोटा सा ग्राम है, जिसमें सब प्रकार के लोग रहते हैं। वहाँ के महाजन लोग धनाढ्य भी हैं।

आप किसी पारिवारिक कारण से दो मास का अवकाश लेकर वहाँ से घर पधारे हुए थे, और थाने का कार्य कोई अन्य व्यक्ति कर रहा था। वहाँ के ठाकुर राजपूतों और महाजनों के बीच कुछ कहा सुनी हो गई। राजपूतों को जागीरदारी का घमण्ड था और महाजनों को पैसे का। बात कुछ बढ़ गई। राजपूतों ने महाजनों की गढ़ में बुलाकर पिटाई कर दी। अब तो देश का वह भाग हिल गया, जयपुर सूचना

पहुंची। वहाँ एक सुपरिन्टेण्डेन्ट पुलिस कुमक लेकर पहुँचे और दोनों पक्षों से बात करके आपस में शांति स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। जयपुर स्टेट का समय था। राजपूत भी झुकने वाले नहीं थे और उधर महाजन पिटे थे, उनका दोष कुछ भी रहा हो, अब सारा मामला उनके पक्ष में था।

इन्हीं दिनों एक दिन आपका जयपुर आना हुआ, तो डी०आई०जी० साहब ने उनको चन्दवाजी का समाचार बतलाया और कहा कि आप तुरन्त चन्दवाजी जाकर सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब को मामला सुलझाने में सहायता कीजिए, अपनी बची हुई छुट्टी आप बाद में लीजिए। आप वहीं से सीधे चन्दवाजी पहुँचे और सारी जानकारी की। सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब ने कहा आप यहाँ की सारी बातें जानते हैं, इस झगड़े का निपटारा आप ही कीजिए। आप पहले गढ़ में गये। राजपूतों ने आपका स्वागत किया कि अब यह झगड़ा निश्चित रूप से निबट जायेगा। आपने सब राजपूतों को एकत्रित करके उनसे ही सारी बातों की जानकारी की। उन्होंने आप से यह भी स्वीकार कराया कि उन्होंने उन्हें गढ़ में बुलाकर जो पीटा वह उनकी गलती रही। थोड़ी देर तक आप उन्हें समझाते रहे कि अपनी गलती स्वीकार कर लेना बहुत बड़ी हिम्मत की बात है।

फिर आप महाजनों के स्थान पर गये और उन्हें एकत्रित करके उनसे उनके पक्ष की सारी बातें सूनी और उन सब को सन्तोष दिलाया। महाजनों को भी आप पर इतना विश्वास था कि आपके कहने पर सब कुछ करने को उद्यत रहते थे। उन्होंने भी आप से इस झगड़े को निपटा देने की प्रार्थना की।

महाजनों से आपने पूछा कि आपके सम्बन्ध ठाकुरों से पहले जैसे ही अब हो जावें तो व्यापार आदि चलाते रहने में आपको क्या आपत्ति है ? वे तो यह चाहते ही थे कि उन्हें देश छोड़कर, सम्पत्ति आदि त्याग कर कहीं जाना न पड़े और जैसे अभी तक व्यापार कर रहे थे, करते रहें।

आपने इन दोनों की सामूहिक बैठक बुला कर, छोटा सा भाषण दिया कि न तो राजपूत गढ़ छोड़कर जा सकते हैं न ही महाजन अपना घर सम्पत्ति छोड़कर अन्य कहीं जावेंगे। गलतियाँ सभी से होती हैं। राजपूत अपनी गलती को मानें और

भविष्य में ऐसा न करने का आश्वासन दें और महाजन लोगों को जैसा संरक्षण उनकी ओर से मिलता रहा है आगे भी देते रहें और महाजन लोग जैसे अभी तक रहते थे वैसे ही रहें, राजपूतों को किसी प्रकार की असुविधा न होने दें, जिससे आपस में किसी प्रकार की कटुता भविष्य में पैदा ही न हो।

दोनों पक्षों ने एक दूसरे से क्षमा याचना की । सारी पुलिस तथा सुपरिन्टेण्डेन्ट साहब अपने-अपने स्थान को चले गये और स्थायी शांति स्थापित हो गई।

सिगरेट का चमत्कार

आपने हमें एक बार बतलाया कि सन् 1928-29 में आप कुछ अधिक सिगरेट पीने लगे। सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इससे आपको भी स्वास्थ्य हानि हुई। आप कृषतनु तो थे ही, पाचन शक्ति भी कम हो गई और शरीर में रक्त की कमी से मुख मंडल पर कालापन आने लगा। परन्तु यह सब होते हुए भी आप सिगरेट पीना न छोड़ सके। उसी वर्ष भण्डारे में पधारना हुआ तो सिगरेट वहाँ भी पी, परन्तु गुरुजनों से छिपकर ही यह कार्य करना पड़ता था। प्रातः काल जब गुरुदेव पूजा के लिए बाहर आए तो सब उपस्थित भाइयों ने गुरुदेव के पैर छूना आरम्भ कर दिया और गुरुदेव को थोड़ी देर तक इसी कारण रुके रहना पड़ा। जब गुरुदेव अपने स्थान पर विराजे तो बतलाने लगे कि पैर छूने की रस्म अपने यहाँ ऐसी चली है कि बहुतों को देखा देखी पैर छूने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यह तो अच्छी बात नहीं है। एक भाई ने जो कि अच्छे विश्वासी थे कुछ निवेदन करना चाहा उन्हें आज्ञा मिल गई और उन्होंने ये भजन सुनाया ?

भज मन सतगुरु सतगुरु सतगुरु - गुरु भज मन गुरु दाता रे।
जग अंधियारा नयन न सुझे, जीव भटक भरमाता रे ।
ज्ञान ज्योति प्रकाश दिखा कर सतगुरु राह बताता रे ॥ भज मन
पोथी पड़ पड़ जग बौराना॰ हाथ कछू नहीं आता रे ।
ग्रन्थन से मन ग्रन्थि न छूटे सतगुरु तत्व लखाता रे ॥ भज मन

गुरु कुम्हार शिष्य कुंभ पियारा गढ़ गढ़ चोट मिटाता रे ।
अन्तर हाथ सहारा देकर बाहर चोट लगाता रे ॥ भज मन
पारस लोहा कंचन करता पारस नहीं बनाता रे ।
सद्गुरु मेहर दृष्टि जब डारें शिष्य गुरुसम बन जाता रे ॥ भज मन

इन्हीं भाई ने आगे निवेदन किया "गुरुदेव का ऐसा उच्च स्थान है कि हम यदि उनके चरण छुए तो इसमें क्या आपत्ति होनी चाहिये ?"

गुरुदेव ने बड़े प्रेम से उस समय बतलाया कि जिनकी ऐसी भावना हो, वे तो अवश्य ही पैर छुए परन्तु ऐसे पुरुष जो छिप छिप कर तो ऐब करें और यहाँ आकर नम्र बनें और पैर छुए, ऐसा मुनासिब नहीं।

हमारे भाई साहब ठा॰ रामसिंह जी को गुरुदेव की यह बात "छिप छिप कर तो ऐब करें" ऐसी चुभी कि अवसर मिलते ही उठे ओर सिगरेट की पेटी ओर दियासलाई जेब से निकाल कर फेंक दी और फिर कभी नहीं छुई। आपने हमें यह भी बतलाया कि उनके स्वास्थ्य में जो ह्रास हो रहा था, रुक गया और वे धीरे-धीरे स्वस्थ हो गये।

मनोहरपुरा में स्वागत

फतेहगढ़ अथवा कानपुर से जब कभी भी कोई गुरु घराने से जयपुर पधारते तो आप उन्हें एक बार अपने घर मनोहरपुरा अवश्य ले जाते। बड़े प्रेम से सब के लिए आप स्वयं ही भोजन बनाकर खिलाते और ऐसे-ऐसे व्यंजन बनाते जिनका उत्तर प्रदेश में खाने का रिवाज नहीं है। एक बार हमें भी इन सब के साथ "गोल दूध" के नाम का पदार्थ खाने को मिला। पूछने पर आपने बतलाया कि केवल दूध ही है जिसमें मलाई नहीं पड़ने दी गई और गाढ़ा होने पर उसमें शक्कर केसर इलायची बारीक करके डाली गई। इसी प्रकार कई नये-नये प्रकार के पदार्थ आप स्वयं सब को बना कर खिलाते थे। इन सब के बनाने में समय लगता ही था। आप बीच बीच में आकर सब को कह जाते कि आपका भोजन लजीज (स्वादिष्ट) हो रहा

है। अभिप्राय यह था कि जितनी भूख अधिक लगेगी उतना ही भोजन का स्वाद भी अच्छा लगेगा।

गुरु घराने का आदर

विवाह आदि के उपलक्ष्य में जयपुर हमारे घर कुछ ऐसे भी मेहमान आए जिनका हमारे गुरुदेव से बड़ा पास का सम्बन्ध था। आपको यह सब मालूम था। आप एक बार बड़े बर्तन में बड़ी ही स्वादिष्ट खीर अपने घर मनोहरपुरा से पकाकर लाये जो इतनी थी कि हम सब ने मेहमानों समेत खूब छक कर खाई। इसी प्रकार एक अवसर पर आप भैंस के दूध का बढ़िया दही इतना बहुत-सा लाए कि सब ने खूब छक कर खाया। आपका आदर भाव गुरु घराने के प्रति इतना बढ़ा-चढ़ा था कि उनके ऊपर न्योछावर हुए जाते थे तथा वश पड़ते हर प्रकार की सेवा के लिए सदा तैयार रहते और करते थे।

जयपुर में रामनवमी का भण्डारा

सन् 1950 के लगभग हमारे पूज्य भाई साहब परमसन्त श्रीमान डाक्टर चतुर्भुज सहाय के नेतृत्व में हमारे सत्संग का प्रचार जयपुर नगर तथा राजस्थान में कुछ अधिक हुआ। आपको यह सब मालूम तो था परन्तु आप सत्संग में जाते न थे। एक बार पूज्य भाई साहब (पूज्य डाक्टर साहब ने इस बात की शिकायत हमारी गुरु माता से की (जो कि फतेहगढ़ ही विराजती थीं)। आगामी भंडारे में जब आप फतेहगढ़ गये तो पूज्य माता जी ने आपसे पूछा "आप उनके सत्संग में क्यों नहीं जाते हैं ? अब जाया करें।" इस आज्ञा का पालन आपने अक्षरशः किया।

जब जयपुर में पूज्य भाई साहब का भंडारा आगामी रामनवमी पर हुआ तो आप उसमें उपस्थित हुए। पूज्य भाई साहब आपको आया देखकर बहुत प्रसन्न हुए और आपने नियमों के अनुसार आपको अपने तख्त के नीचे की लाइन में बिठलाया। पूज्य भाई साहब के सत्संग में यह स्थान बड़े आदर का माना जाता था। अब कुछ बदल गया है।

आदर का एक और दृष्टान्त

पूज्य भाई साहब परमसन्त डा० चतुर्भुज सहाय जी के सत्संग में आपके साथ जब हम जयपुर में होते अवश्य जाते। पूज्य भाई साहब का स्वर्गवास हो चुका था तब आपने एक बार इस बात पर आपत्ति की कि भंडारे की पूजा में पूज्य भाई साहब के सुपुत्र डा० नरेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ को सामने शिष्यों की पंक्ति में क्यों बिठलाया जाता है ? उस समय के गुरु लोगों ने आपको यही बतलाया कि इन्हें गुरुदेव ने जब कोई विशेष स्थान सत्संग में नहीं दिया तो अभी यह हमारी पंक्ति में बैठने योग्य नहीं हैं। आपको यह उत्तर संतोषजनक नहीं लगा।

उन्हीं दिनों पूज्य भाई साहब परम संत श्रीमान बा० बृजमोहन लाल जी 'संत' नाम की एक मासिक पत्रिका लखनऊ से निकालते थे। उन्होंने श्रीमान लाला जी महाराज की जीवनी संस्मरण के रूप में निकाली थी जिसमें उन्होंने एक घटना श्रीमान लाला जी महाराज के समय की इस प्रकार लिखी थी :-

"श्रीमान लाला जी महाराज अपने घर में बाहर के चौक में विराजे हुए थे कि दरवाजे पर एक इक्का रुका। श्रीमान ने थोड़ा झुक कर देखा तो देखते ही नंगे पैर ही बाहर दौड़ गए और पधारने वाले उन विशिष्ट व्यक्ति को इक्के से उतार कर आदर सहित अन्दर लाये। जिस स्थान पर आप स्वयं बैठते थे वहाँ उनको बिठलाया और आप हाथ बाँध कर उनके सामने बैठ गए। यह विशिष्ट व्यक्ति उनके गुरुदेव की संतान थे जिन्होनें श्रीमान को आध्यात्म विद्या प्रदान की थी, परन्तु इन विशिष्ट व्यक्ति का आध्यात्म में कोई ऊंचा दर्जा न था।"

परम पूज्य ठाकुर साहब ने घर जाकर संत का वह अंक रात्रि को 2 बजे तक लग कर ढूंढ निकाला जिसमें उक्त विवरण छपा था और दूसरे दिन लाकर सत्संग के अध्यक्ष आदि को दिखलाया कि यह प्रमाण है, आपको गुरुदेव की संतान का यथोचित आदर करना चाहिए। उसी समय पूज्य डा० नरेन्द्र कुमार कुलश्रेष्ठ को उच्च आसन पर आसीन कराया गया तथा तभी से उनका सम्मान गुरु के रूप में होता आ रहा है।

सती बाई सा

आपकी बड़ी सुपुत्री का विवाह ठाकुर साहब भवानी सिंह जी सिंहपुरी से हुआ था। विवाह के कुछ समय बाद से ही ये ठाकुर साहब कुछ अस्वस्थ रहने लगे। वैद्य हकीम डाक्टर आदि सभी का इलाज होता रहा परन्तु उनके स्वास्थ्य में सुधार न हो पाया तथा अन्त में वही हुआ जो होना था अर्थात् उनका स्वर्गवास अल्प आयु में ही हो गया। यह घटना सन् 1948 की है।

राजस्थान में विशेष करके राजपूत राजाओं और सरदारों के परिवारों में उस समय परदे की प्रथा पूर्णरूप से विद्यमान थी। अतः इनकी पत्नी, जिन को हमारे भाई साहब के यहाँ 'बाई जी सा' कहा जाता था, अलहदा जनाने महलों में रहतीं और ठाकुर साहब मरदाने (पुरुष विभाग) में रहते जहाँ उनके पास लोग आते-जाते रहते। अतः बाई जी सा को कभी-कभी ही अपने पति देव के दर्शन हो पाते थे। इन बाई जी सा को जिस समय ठाकुर साहब के निधन का समाचार मिला, बाई जी सा में किसी प्रकार के दुख के चिन्ह नहीं दिखाई दिए। उठीं और स्नान करके अपना शरीर शुद्ध किया, अपने विवाह के समय के अच्छे-अच्छे वस्त्र तथा आभूषणों से अपने आपको अलंकृत किया, अपने पति के शव के साथ श्मशान में जाने को तैयारी हो गई तथा अपने पति के साथ सती होने के निश्चय की घोषणा की। बताया जाता है कि उस समय इन बाई जी सा के मुख मंडल ही नहीं सारे शरीर में तेज का इतना प्रकाश हो गया कि किसी का भी साहस इनका विरोध करने को नहीं हुआ।

बाई जी सा अपने पति के शव के साथ श्मशान भूमि गई और शव को गोद में लेकर चिता पर बैठीं। चिता धीरे-धीरे प्रज्वलित न होकर बड़ी शीघ्रता से प्रज्वलित हो गई। बाई जी सा ने आँख खोले हुए हाथ उठा कर सबको आशीर्वाद दिया। फिर उनके हाथ अग्नि से जल कर टूट-टूट कर गिरे परन्तु वे पूर्ण रूप से जल चुकीं तब तक स्थिर बैठी रहीं।

हमारे भाई साहब महात्मा ठा० रामसिंह जी साहब को यह समाचार दूसरे

दिन मिला । आपने जाकर चिता को प्रणाम किया तथा गुरु भगवान की सेवा में कोटि-कोटि धन्यवाद अर्पण किया । नोट- हमारे भाई साहब के अनुयायी श्री चिरंजी लाल जी ने एक सचित्र पुस्तिका सन 1986 मैं प्रकाशित की है जिसमें इन सतीबाई सा के जीवन आदि का पूर्ण विवरण छपा है-विशेष जानकारी के लिए पाठक गण इस पुस्तिका को पढ़ें ।

पदवी गुरु रूप

हमें आपने एक बार स्वयं ही बतलाया कि गुरुदेव ने जब आपको अभ्यास बतलाया था तभी सारी इजाज़ते दे दी थीं । 'इजाज़त' हमारे इस अभ्यास में गुरुदेव की बड़ी देन मानी जाती है । इसका अर्थ यह है की आप नये लोगों को अभ्यास बतला सकते हैं । इसके लिए गुरुदेव ने आवश्यक शक्ति आपको प्रदान कर दी । बतलाया जाता है कि अन्तिम दिनों में अपने पास रहने वाले व्यक्तियों को आपने यह रहस्योद्घाटन भी किया कि सत्संग के पहले दिन ही आप गुरु में लय होते इसके बजाय आप में गुरुदेव लय हुए हैं और 'फनाफिल मुरीद' का दर्जा आपको प्राप्त हुआ ।

हमारी जानकारी के अनुसार संत सद्गुरु की पदवी अर्थात सद्गुरु के रूप में कार्य करने की आज्ञा दो प्रकार से होती है । एक तो किसी ऐसी सभा (मजलिस) में जिसमें सद्गुरु के दर्जे के एक से अधिक नियमित रूप से अधिकार प्राप्त व्यक्ति उपस्थित हों तथा वे सब भी इसका समर्थन करें । दूसरा नियम 'लिखित इजाजत' देने का है । इसमें एक अधिकार प्राप्त सद्गुरु आज्ञा पत्र (इजाज़त नामा) लिखता है तथा दूसरा अधिकार प्राप्त सद्गुरु उसी आज्ञा पत्र का समर्थन (तस्दीक़) करता है ।

पहले प्रकार से इजाजत हमारे गुरुदेव श्रीमान लाला जी महाराज को एक बड़ी संतों की सभा में हुजूर महाराज द्वारा दी गई थी तथा इसके बाद श्रीमान बड़े भाई साहब परम संत महात्मा बाबू बृजमोहन लाल जी (लखनऊ वाले) को उनके गुरुदेव द्वारा श्रीमान लाला जी तथा श्रीमान चच्चा जी महाराज की उपस्थिति में दी गई थी । दूसरे प्रकार से इजाजत हमारे परम पूज्य भाई साहब परम संत डाक्टर श्री

कृष्णलाल जी सिकन्द्राबादी तथा जयपुर वाले पूज्य चाचा जी महाराज परम संत डाक्टर कृष्णस्वरूप जी को दी गई थी। हमें सद्गुरुजनों के सम्पर्क में रहने से तथा उन सब की सेवा के समय बतलाये अनुसार यह जानकारी मिली है जिसे हम आप सब की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं।

समय के संतों के द्वारा हमें यह भी बतलाया गया है कि संतों की सभाओं में इजाजत दिए जाने के उपरान्त भी लिखित इजाजत नामा दिया जाना आवश्यक होता है और हमारे सामने जो परम संत हुए हैं उन सब के पास इस प्रकार का लिखित इजाजत नामा रहा है। यह परम्परा के अनुसार एक आवश्यकता रही है। हम किसी विशेष व्यक्ति के अधिकार प्राप्त 'संत सद्गुरु' अथवा 'परम संत' कहे जाने पर आपत्ति करें अथवा आक्षेप करें, ऐसा विचार हम में लेशमात्र भी नहीं है परन्तु हम केवल इतना ही स्पष्ट कर देना चाहते है कि हमारे पूज्य भाई साहब ठाकुर साहब श्री रामसिंह जी ने कभी भी अपने आपको गुरु रूप में प्रस्तुत नहीं किया। आपके पास आने वालों और अभ्यास सीखने वालों को आपके द्वारा पर्याप्त लाभ हुआ है, इसमें संदेह का लेशमात्र भी स्थान नहीं है। हमें स्वयं भी आपके सत्संग में पर्याप्त लाभ मिला। अतः हम इतना कहने की स्थिति में अवश्य हैं कि पूज्य भाई साहब के पूर्ण होने में तो कोई कमी दिखलाई नहीं दी। आपकी समाधि पर जब कभी भी हमें सामूहिक पूजा आदि में जब-जब भी भाग लेने का अवसर मिला, हमें संतों की समाधि पर जो आध्यात्म का धारा प्रवाह मिलता था, वही यहां भी मिला। हमारा आदर भाव भी आपके प्रति उतना ही रहा है। इससे अधिक हम जानते भी नहीं हैं। पाठक गण हमें क्षमा करें।

जयपुर में सामूहिक पूजा

कई बार हमें आपके साथ सामूहिक पूजा में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमारी सामूहिक पूजा में भी परम्परा के अनुसार विशिष्ट व्यक्ति के लिए विशिष्ट स्थान नहीं होता। फिर भी आप सदा ही हमारा परिचय अपने से बड़े के रूप में देकर ध्यान कराने के लिए हमें आगे कर देते थे। आपके प्रति आदर भाव के कारण हम कुछ कह भी नहीं पाते थे। परन्तु हम उनके बढ़े-चढ़े अभ्यास तथा आध्यात्म में

प्राप्त उनके उच्च पद को जानते थे और उसके अनुसार उन्हें ही गुरु रूप में शक्ति का स्त्रोत मान कर उन्हीं से आध्यात्मामृत लेकर सारे उपस्थित महानुभावों में बाँटते रहते थे । आपकी केवल उपस्थिति ही सारी सभा में पूजा का सशक्त वातावरण बनाने के लिए पर्याप्त होती थी। हम तो आपकी आज्ञा पालन में आप ही के बतलाये अनुसार कार्य करते रहते और सभा आध्यात्मामृत से ओतप्रोत होती रहती।

संगीत से आपको विशेष प्रेम था। परन्तु भक्ति प्रधान भजन ही सुनते थे। सामूहिक पूजा के अवसरों पर आप विशेष रूप से ऐसे भजन प्रस्तुत कराते जिससे ध्यान का वातावरण बन जाता और उस समय तथा फिर ध्यान में, प्रेम धारा का वह प्रवाह होता कि सबके सब बे-सुध होकर बैठे रहते। वहीं आपके साथ बैठ कर समय बीतने का आभास ही नहीं होता था।

जीवन के अंतिम वर्षों में आप अधिक समय तक अस्वस्थ रहे। कुछ समय तो आपको सेनेटोरियम में ही रहना पड़ा। हम भी आपकी कुशलक्षेम का समाचार लेने आपके दर्शनों को जाते तो बड़े प्रेम के वातावरण में आपके साथ समय व्यतीत होता। इन सारी बातों की याद ही याद रह गई है। परन्तु संतों की इस याद में भी कितना आनन्द है, यह बात केवल वे ही सौभाग्यशाली जानते है जिन पर उनकी कृपा अब भी उसी प्रकार है, जैसी उनके सामने थी।

बीमारी की निर्बलता में भी हमने देखा कि आप सेवा लेने से सदा बचते। छड़ी अथवा दीवार का सहारा लेकर ही आप नित्य निवृति आदि को जाते । सहायता के लिए कोई भी आपकी ओर बढ़ता तो आप उसे मना कर देते।

रामसिंह ही बणग्यो

उन दिनों आप जयपुर स्टेट के झुंझुनू नगर में थानेदार के पद पर कार्य कर रहे थे। आपके साथ आपके सबसे छोटे सुपुत्र विष्णुसिंह आपके साथ जयपुर से झुंझुनू जाते हुए रींगस स्टेशन पर उस ओर जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे।

आपके एक साथी वहां मिल गये तो उनसे आप खड़े-खड़े बातें करने लगे। विष्णुसिंह प्लेटफार्म पर पड़ी बैंच पर बैठे रहे। इतने में एक सेठ जी (व्यापारी बनिये) भी आकर इनके पास बेंच पर बैठ गये। एक लड़का मूँगफली बेचता उधर से निकला तो सेठ जी ने उससे मूँगफली मोल ली और तोड़-तोड़ कर खाने लगे। उनका ध्यान पास में बैठे विष्णुसिंह की ओर गया तो उन्हें बच्चा समझ कर मूँगफली देने लगे। अपने स्वभाव तथा पैतृक परम्परा के अनुसार विष्णुसिंह ने लेने से इकार किया और सेठ जी के बार-बार आग्रह करने पर भी बच्चे ने उनकी मूँगफली लेना स्वीकार नहीं किया।

सेठ जी को यह बात अच्छी नहीं लगी और अपनी मारवाड़ी भाषा में बोल पड़े - 'तू तो रामसिंह ही बणग्यो।"

हमारे भाई साहब के साथ जो सज्जन बात कर रहे थे उनका ध्यान सेठ जी की यह बात सुन कर उनकी ओर आकृष्ट हुआ और इन्होंने सेठ जी से पूछा- "सेठ जी ! आपने राम सिंह जी को देखा है ?"

सेठ जी ने अपनी सरल हृदयता से उत्तर दिया "ना महाराज देख्यो तो कोनी वाका नाम सुण्यो भोत छः कि वे कोई से काँई भी कोन ले और बड़ी ईमानदारी साधु प्रवृति से रहवे छे।" उन सज्जन ने आपकी ओर इंगित करते हुए सेठ जी से कहा कि "अब दर्शन भी कर लीजिए। ये आपके सामने खड़े हैं। और ये बेंच पर बैठे इनके पुत्र हैं।"

सेठ जी उठे और आपके पैर छूने के लिये बढ़े परन्तु हमारे भाई साहब किसी को अपने पैर नहीं छूने देते थे। यदि कोई उनका ध्यान उधर न हो तो उस समय छू भी लेता तो आप वापिस उसके पैर छूते और जब तक ऐसा न कर पाते चैन नहीं लेते। आपकी नम्रता का उदाहरण आप स्वयं ही थे। ऐसी नम्रता तथा गुरुदेव में अटल विश्वास अन्य कहीं देखने में नहीं आया।

सिद्ध सन्तों की एकता और दयालुता

साधना के क्षेत्र में परम्परा में भेद होने पर भी सिद्धान्तों में कोई भेद नहीं होता। इस सम्बन्ध में लगभग आठ दस वर्ष पूर्व घटित एक प्रसंग परम पूज्य गुरुदेव महात्मा रामचन्द्र जी के पौत्र महात्मा दिनेश कुमार जी (फतेहगढ़) ने मुझे सुनाया। प्रसंग इस प्रकार है :-

गणेशपुरी (थाने-महाराष्ट्र) के सिद्ध सन्त स्वामी मुक्तानन्द जी महाराज के तिरोधान के कुछ वर्ष पश्चात उनकी परम्परा के एक साधक-भक्त को इस बात का बहुत दुःख था कि उनके जीवन काल में वे उनके दर्शन नहीं कर सके। उनका यह दुःख दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा था। इस दुःख के कारण वे यदाकदा शोक से अत्यन्त विह्वल हो उठते थे।

एक रात्रि को स्वप्न में उन्हें एक महात्मा ने दर्शन दिये। उन्हें देख वे बड़े प्रसन्न और पुलकित भाव से उनके चरण स्पर्श करने के लिए आगे बढ़े। पर उन महात्मा ने उन्हें अपने चरण स्पर्श करने से मना करते हुए कहा "मैं तुम्हारा गुरु स्वामी मुक्तानन्द नहीं हूं। मेरा नाम तो रामसिंह है। मैं फतेहगढ़ निवासी महात्मा रामचन्द्र का शिष्य हूं। मैं आप से यह कहने आया हूं कि आप महात्मा रामचन्द्र जी की समाधि पर होनेवाले भण्डारे में जाइये। वहीं आपको अपने गुरु के दर्शन होंगे।"

स्वप्न से जागते ही वे साधक-भक्त हर्ष विभोर हो उठे। शीघ्र ही उन्होंने फ़तेहगढ़ और महात्मा रामचन्द्र जी की समाधि पर होनेवाले भण्डारे की जानकारी कर ली। अन्ततः ईस्टर भण्डारे में सम्मिलित होने के लिए वे फतेहगढ़ (उत्तर प्रदेश) पहुंच गये। समाधि पर भण्डारे में सम्मिलित हुए उन्हें दो दिन बीत चुके थे। तीसरे दिन रविवार को पूर्वाह्न पूजा के पश्चात भण्डारे का सत्र समापन हो जाता है। दो दिन बीत जाने पर भी दर्शन नहीं होने के कारण वे दुखी तो थे पर, अभी आशा भंग नहीं हुई थी। तीसरे दिन की समापन पूजा में वे नेत्र बन्द कर बड़े आर्त भाव से मन ही मन अपने गुरु को पुकार रहे थे, तभी उन्हें आँखें खोलने की प्रेरणा हुई। आँखें खोलते ही उन्होंने देखा कि सामने ही कई सिद्ध सन्तों के साथ साथ उनके

गुरु स्वामी मुक्तानन्द परमहंस भी बीच में बैठे हैं। स्वामी जी अपने हाथ में एक छोटा सा श्वेत चँवर लिये हुए हैं जिसे वे धीरे धीरे डुला रहे हैं।

वे साधक-भक्त अपने गुरुदेव के दर्शन कर गद्गद् हो उठे। उनकी जीवन की साध पूरी हो गई। उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। भण्डारे में सम्मिलित हो उन्होंने अपने को धन्य माना।

अपने में स्वयं प्रमाण

ठाकुर साहिब श्री रामसिंह जी जयपुर रियासत की पुलिस में, अपने सेवाकाल में, सच्चाई और सच्चरित्रता के लिए स्वयं प्रमाण माने जाते थे। वे कभी कोई झूठा मुकदमा नहीं बनाते थे और किसी निर्दोष व्यक्ति को कभी परेशान भी नहीं करते थे। एक बार का प्रसंग है। ठा॰ सा॰ श्री रामसिंह जी एक थाने के प्रभारी अधिकारी थे। एक ऐसा मामला उनकी पकड़ में आया जिसमें कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य (चश्मदीद गवाह) नहीं था। मामला सच्चा था। अपराध करने वाला व्यक्ति सम्पन्न और दबदबे वाला था। कोई अपराधी दण्डित होने से बच जाये, यह ठाकुर साहब को सहन नहीं होता था। मामला सच्चा था अतः मामले का चालान उन्होंने न्यायालय में प्रस्तुत कर दिया।

उन दिनों जयपुर रियासत में सबसे बड़ी कोर्ट "चीफ कोर्ट" कहलाती थी। उसके चीफ जस्टिस प्रसिद्ध न्यायविद सर सीतला प्रसाद वाजपेयी थे।

अन्ततः मामला चीफ कोर्ट में पहुंचा। अभियुक्त की ओर से मामले की पैरवी के लिए बड़े-बड़े वकील नियत किये गये थे। वे अपने मुवक्किल को बचाने का हर सम्भव प्रयास कर रहे थे। चीफ जस्टिस सर सीतला प्रसाद वाजपेयी ने सारा मामला बड़े ध्यान से सुना। बचाव पक्ष ने अभियुक्त को निर्दोष करार देने के लिए अनेक तर्क और नजीरें पेश की। सभी यह मान रहे थे कि कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य नहीं होने के कारण अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया जाएगा।

चीफ़ जस्टिस सर वाजपेयी ने बड़ी गम्भीरता पूर्वक अपना निर्णय सुनाया

जिसमें उन्होंने अभियुक्त को कई वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया। इस निर्णय को सुन कर बचाव पक्ष के सभी वकील हतप्रभ रह गये। वे सभी बार-बार चीफ जस्टिस से यह आग्रह करने लगे कि यह दण्ड भारतीय साक्ष्य अधिनियम के विरूद्ध है। उनका कहना था कि मामले में कोई प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं है और एक थानेदार के बयान को ही प्रमाण नहीं माना जा सकता।

जस्टिस वाजपेयी ने बचाव पक्ष के वकीलों द्वारा बार-बार आग्रह करने पर अन्त में अपनी सहज गम्भीरता के साथ कहा- "कानून बनाने वालों को उस समय यह अनुमान ही नहीं था कि भविष्य में कोई रामसिंह जैसा थानेदार भी हो सकता है। वह अपने में स्वयं प्रमाण हैं।" यह कह कर वे अपने आसन से उठ गये। सजा बहाल रही। बचाव पक्ष के सभी वकील एक दूसरे का मुंह ताकते रह गये। न्यायिक क्षेत्र में यह एक अभूतपूर्व घटना थी।

गुलाम

सन 1940 की बात है - इस वर्ष फ़तेहगढ़ भण्डारे में पूज्य भाई साहब रामसिंह जी और मैं एक साथ साथ ही गये थे। ट्रेन लेट हो जाने के कारण हम अर्ध रात्रि पश्चात ही फतेहगढ़ पहुँचे और घर पर सूचना देकर समाधि स्थल पर जाकर ठहर गये। हमारे पूज्य भाई साहब ने रास्ते में कुछ भी न खाया। फर्रूखाबाद स्टेशन से थोड़ी मिठाई लेकर रख ली और समाधि पहुंचकर हाथ पैर मुँह धो कर समाधि पर दर्शन किये, प्रणाम अर्पण किया और लगभग 30 घंटे पश्चात् थोड़ा प्रसाद पाया।

उन दिनों पूज्य भाई साहब सन्त महात्मा श्री जगमोहन नारायण जी द्वारा प्रबन्ध किया जा रहा था। दूसरे दिन प्रातः हम दोनों भी श्रीमान लाला जी महाराज की बैठक में जाकर बैठ गये। इतने में ही अखिलेश जी, जो उस समय दो वर्ष की आयु के होंगे, खेलते खेलते वहाँ पहुँच गये। भाई साहब ने मुझसे पूछा कि ये कौन है ? मैंने बतलाया कि ये हमारे गुरुदेव के पौत्र है। भाईसाहब ने अपने थैले में से एक रुपया (उस समय किंग जार्ज के चित्र वाले चाँदी के रुपये चलते थे) निकाल कर

बड़े आदर से झुककर बेटे अखिलेश को पेश किया। अखिलेश जी ने लेने से इन्कार किया-जैसा कि वहाँ के बच्चों को सिखलाया गया था।

मैंने देखा कि भाई साहब पर इसका कुछ विपरीत प्रभाव पड़ रहा है और कहा, "बेटे, ये ताऊ जी हैं-ले लो !"

मेरे कहने पर उन्होंने रुपया ले लिया और अन्दर बड़ी माताजी को बतलाया। तुरन्त ही तब मेरे सब समाचार बतलाने पर ही वह रुपया स्वीकार किया गया। हमारे पूज्य भाई साहब ठा० रामसिंह जी का गुरु भगवान के परिवार के लिये आदर भाव की पुष्टि इससे होती है।

अगले वर्ष जब पूज्य भाई साहब फतेहगढ़ पहुँचे तो कमरे में वे ही बेटे अखिलेश आये और आप से आपके बारे में पूछा तो आपने अपने स्वाभाविक ढंग से कहा "अजी ये तो इस दर का गुलाम है।" उन्होंने अन्दर जाकर बतलाया कि 'गुलाम जी' आये हैं। बहिन शीला फिर दौड़ी आई और पूज्य भाई साहब को देखकर प्रणाम किया और 'गुलाम' शब्द को लेकर बड़ी देर तक चर्चा और हंसी होती रही।

भाई साहब ठा० रामसिंह जी केवल कहते ही न थे परन्तु अपनी इस भावना को अपने हर कार्य में प्रस्तुत भी करते थे। निर्वाण

आपने 14 जनवरी सन 1971 मकरसंक्रांति को निर्वाण प्राप्त किया। आपकी समाधि साँगानेर एयरपोर्ट के पूर्व में आपके निवास स्थान ग्राम मनोहरपुरा के पास एक बगीचे में बनाई गई है। 15 जनवरी 1971 को आपका दाह संस्कार यहीं हुआ था। हर वर्ष 14-15 जनवरी को हम सब वहीं एकत्रित होकर सामूहिक सत्संग भजन ध्यान आदि करते हैं और आपकी ओर से पर्याप्त रूप में प्रेम की धारें तथा आध्यात्मिक आनन्द पाते हैं। घर पर सबके लिये जो प्रसाद रूप में भोजन पूड़ी साग आदि का प्रबन्ध होता है उसमें भी वही पुराना प्रेम से ओत-प्रोत स्वाद हमें तथा सभी उपस्थित साथी सज्जनों को मिलता है।

अब यह भोजन का आयोजन भी समाधि स्थल पर होता है। चि०

नारायणसिंह जी सभी प्रबन्ध करते हैं।

नोट : नवम्बर दिसम्बर 1986 तथा जनवरी 1987 में जयपुर से प्रकाशित दैनिक "राजस्थान पत्रिका" में नगर परिक्रमा शीर्षक के अन्तर्गत श्रीमान पूज्य ठाकुर साहब की जीवनी का विस्तृत प्रकाशन हुआ है। बाद में उनकी जीवनी पुस्तक रूप में भी छाप कर प्रस्तुत की गई है जो चि० श्री नारायण सिंह जी तथा भाई साहब के शिष्य श्री चिरंजी लाल जी के प्रयत्नों का फल है। इनमें आपके जीवन का पूर्ण विवरण मिलेगा।

यादें

संस्मरण - (भाग 6)
पुलिस का फंदा . . . . मेरा उद्धार

यह विवरण हमारे पुराने अनुभवी तथा अभ्यास में बढ़े-चढ़े भाई साहब से, जिनकी आयु 75 वर्ष होगी, सम्बन्धित है और स्वयं अपने पर बीती हुई घटना का विवरण उन्हीं का लिखा हुआ है। यहां ज्यों का त्यों पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। आपकी इच्छा यही है कि आपका नाम इसके साथ प्रकाशित न किया जाय। अतः हम उनका पूर्ण परिचय पाठकों को नहीं दे रहे हैं।

आपकी रेल सेवा के समय में ही एक रेल की बहुत बड़ी दुर्घटना होते-होते बच गई। गुरुदेव की अनुमति लेकर आपने स्वयं ही त्याग पत्र दे दिया और सेवा मुक्त होकर कानपुर अपने घर चले गए। वहाँ एक व्यापारिक संस्थान में आपको कुछ कार्य ऐसा मिला कि आपने बड़ी सुविधा से अपने पुत्रों, पुत्रियों को उच्च शिक्षा देकर उनके विवाहादि कर दिये।

आज ये सपरिवार सन्तोष का जीवन व्यतीत कर रहें हैं। आप पर गुरु कृपा विशेष है और इसी कारण सांसारिक तथा आध्यात्मिक रूपों से हम उन्हें धनी कह सकते हैं।

यहाँ इस विवरण में परम सन्त महात्मा डा० कृष्णस्वरूप जी तथा भाई साहब पूज्य ठाकुर साहब रामसिंह जी का नाम आता है, इन महापुरुषों का परिचय हमारे पाठकों को इससे पूर्व मिल चुका है।

नोट-अब इस संस्करण में हम आपका नाम प्रकाशित करना उचित समझते हैं। आप महात्मा श्री प्रताप नारायण जी कपूर कानपुर निवासी हैं। इस संस्करण के निकलने के पहले आपका स्वर्गवास हो गया।

पुलिस का फंदा . . . . . मेरा उद्धार

सन् 1934 की बात है, जब मैं राजस्थान नवलगढ़ स्टेशन पर रेलवे में तार बाबू का काम करता था, पुलिस अथवा सरकारी अफ़सरों, कचहरी आदि से सदा घबराता रहता था। नवलगढ़ शेखावाटी, में जो उस समय जयपुर रियासत का स्टेशन था, मुझे 15 रोज काम करने का आर्डर हुआ। घर से पत्नी को साथ लेकर गया और काम करने लगा।

एक दिन सायंकाल 5 बजे वाली गाड़ी निकल जाने के बाद मैं बैठा हिसाब मिला रहा था कि एकाएक स्टेशन मास्टर साहब आये और कहने लगे कि "तार बाबू आपको थानेदार ने थाने पर बुलाया है। सिपाही आया है।" सुनते ही मैं घबरा गया। स्टेशन मास्टर साहब ने कहा कि आपने कहीं किसी बगैर टिकिट वाले से रिश्वत के रूप में पैसे तो नहीं लिए। मैंने कहा "मैं रिश्वत लेता ही नहीं। बिल्टी वगैरह छुटाने के पैसे भी आप स्वयं ही वसूल करते हैं।" कहने लगे तुम्हें जाना पड़ेगा। मैं चुप हो गया व हिसाब मिलाकर सरकारी रुपया स्टेशन मास्टर को देकर सिपाही के साथ चलने लगा तथा स्टेशन मास्टर से कहा कि मेरे थाने जाने का हाल मेरी घरवाली को न बताना। देखता हूं क्यों बुलाया है। थाना लगभग २ फ़रलांग पर था, पर मेरे पैर इतने भारी हो गये थे कि मुझे वह रास्ता काफी दूभर लगा। दिल में घबराहट थी। सोचता जाता कि मुझसे क्या अपराध हुआ जो पुलिस में जाना पड़ रहा है। थाने पहुंचा तो देखा सामने दालान में जाँघिया पहने एक आदमी रोटी बना रहा है। मैंने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि यही थानेदार होंगे। सिपाही ने उन्हें ही सम्बोधित करते हुए कहा "अन्नदाता जी, तार बाबू जी आ गया छः।" उन्होंने बड़े ही मधुर शब्दों में कहा "याँ ने छत्त माले ले जाओ और चटाई बिछा बैठाओ।" मैंने चाहा कि यहीं यह बता दें कि क्यों बुलाया है। मैंने पूछा कि मेरा क्या अपराध है जो आपने बुलाया है तो फरमाया "आप ऊपर बैठें मैं अभी आता हूं।" मैं चुपचाप सिपाही के कहे अनुसार छत्त पर जाकर बैठ गया।

10 मिनट बाद आप आए। इतने बीच में मैंने सोचा कि ये काहे के थानेदार हैं, अपने हाथों रोटी बनाते हैं, मामूली आदमी का भेष बना रक्खा है। यह भी ख्याल

आया कि पुलिस वाले तो इतना मधुर नहीं बोलते हैं, वे तो बिना अपशब्द के बात नहीं करते। पर यह सोच कर मैंने अपने वहम को और ज्यादा बढ़ा लिया कि मधुर वाणी पुलिस वाले खतरनाक भी हो सकते हैं। जब वे साहब पधारे तो मैं आदर भावना से खड़ा हो गया, कहने पर बैठ गया। मैंने फिर पूछा कि मेरा क्या अपराध है तो फिर मधुर शब्दों में बोले "आप डरे नहीं, मैंने तो केवल आपको मिलने के लिए बुलाया है किसी अपराध में नहीं।" सुन कर मेरी जान में जान आई। फिर पूछा आप क्या करते हैं। मैंने जवाब दिया, "मैं तार बाबू हूं रेलवे में नौकर हूं।" बोले नहीं, आप ईश्वर के वास्ते क्या करते हैं।" मुझे जल्दी जान छुड़ाने की पड़ी थी। पुलिस वालों से ज्यादा बातचीत करना ठीक नहीं समझता था, सो कहा "मैं यदा-कदा रामायण पढ़ लेता हूं बाकी कुछ नहीं।" फिर उन्होंने शांत होकर आँख बन्द कर बैठने को कहा। मैं बैठ गया पर घबराहट के साथ। 15 या 20 मिनट बाद आँखें खोल कर पूछा, "आपको क्या लगा ?" मैंने कहा, "मुझे तो कुछ मालूम नहीं पड़ा।" कहा, "खैर, आप क्या अजमेर भी जाते हैं ?" "ही जब आर्डर वहाँ जाने का मिलता हैं तो जाता हूं।" बोले, "अगर अब आप जावें तो (जो पता बतलाया अब याद नहीं है) वहां पर एक डाक्टर साहब रहते हैं, आध्यात्म विद्या के संत है। आप मिलेंगे तो आप खुश होंगे।" मुझे तो पीछा छुड़ाना था अतः कबूल कर लिया कि अच्छा जाऊंगा तो मिलूंगा। तब आपने उसी सिपाही को बुलाकर मुझे स्टेशन तक पहुंचा आने का हुक्म दिया। मैं तो सिर पर पैर रखकर जल्दी स्टेशन आया, स्टेशन मास्टर मेरी राह देख रहे थे। पूछने पर सब बात बता दी, यह पहेली न उनकी और न मेरी समझ में आई।

इस घटना के करीब आठ नौ माह के बाद मेरी नौकरी स्टेशन झालाना (जिसका नाम आजकल गांधीनगर हो गया है) पर हो गई। वहां पर एक कस्टम क्लर्क थे। उन्होंने कहा कि "छोटे बाबूजी आओ चलो जयपुर में आप को कीर्तन सुनवा लावें। मैंने साइकिल उठाई और चल दिया। कीर्तन करने वाले गौराँग महाप्रभु के अनुयायी थे। सुनने में बड़ा आनन्द आया। खत्म होने पर मैंने उन कस्टम क्लर्क से पूछा कि "क्या हमारे क्वार्टर में भी यह कीर्तन करने आ सकते हैं ?" उन्होंने पूछ कर कहा हाँ हाँ, आ सकते हैं। अतः मैंने उनसे एक दिन नियत कर लिया। मैंने पूछा कि "मुझे क्या करना होगा ?" उन्होंने कहा, "आप तो केवल भगवान का मंडप बना लें व हलवा पूरी का प्रसाद। गाने-बजाने का साज सामान

हम अपना लावेंगे।" निश्चित दिन साँय 7 बजे यह मंडली पधारी व स्टेशन से 200 कदम की दूरी से हरि कीर्तन करती आयी। आकर मंडप के सामने कीर्तन करने लगे। मैं भी प्रेम विभोर हो गया, रोमान्च हो आया। रात 12 बजे तक हरि कीर्तन भजन इत्यादि हुए। उस मंडली में दो बालक आठ नौ साल के थे जिनके भजन बहुत अच्छे लगे। कीर्तन खत्म कर प्रसाद वितरण हुआ व मंडली जाने लगी। तब वह कस्टम क्लर्क मुझे एकान्त में ले गये, "इनके आने जाने को किराया 10 रू० है क्योंकि एक ट्रक में आये हैं।" वह तारीख महीने की आखिर की थी। नौकर पेशा के पास इस आखिरी तारीख में रुपया कहां ? खैर स्टेशन के सरकारी कैश में से 10) रु० लाकर दे दिये। फिर उसने कहा कि यह मंडली जहां जाती है 35) रू० लेती है मैंने कहा यह तो मुझे बताया नहीं था, वरना मैं 40) रू० तनखा पाने वाला कैसे यह व्यय कर सकता था। पर मजबूर था, वह भी सरकारी खजाने से दिये। उनके चले जाने पर उन्हीं भगवान कृष्ण के सामने कान पकड़ कर उठा बैठा कि आइन्दा यह किराये का कीर्तन नहीं कराऊंगा। पर दूसरे दिन ही मैं बाजार से एक झाँझ ले आया और रोज भगवान के चित्र के सामने झाँझ बजा कर कीर्तन कर लेता था।

एक दिन जैसे ही कीर्तन करने के बाद क्वार्टर से बाहर निकला व स्टेशन की तरफ देखा तो देखता क्या हूं कि वही थानेदार जो नवलगढ़ में मिले थे बैंच से उठ कर मेरी ओर आ रहे हैं। कहने लगे "अरे तार बाबू जी क्या आप ही कीर्तन कर रहे थे, बड़ा सुन्दर कीर्तन था।" मेरी जान निकल गई कि जैसे-तैसे वहां इनसे पिण्ड छुड़ाया था आप फिर आ गये। कोई चारा न देखकर मैंने कहा, कि "मैं ही कीर्तन कर रहा था।" पूछा कि, "क्या आप, उन डाक्टर साहब से अजमेर में मिले थे ?" मैंने कहा, "नहीं मिल नहीं पाया।" बोले कि "बड़ी खुशी की बात है कि वही डाक्टर साहब, यहीं जयपुर में ही आकर रहने लगे हैं। हल्दियों के रास्ते में साँथा ठाकुर साहब के नौहरे में रहते हैं। गनगौरी दरवाजे में होमियोपैथी की दुकान है।" इतने में गाड़ी आई और वे साहब तो बैठ कर चले गये।

मेरे दिल में इन डाक्टर साहब से मिलने की तीव्र इच्छा पैदा हुई। साइकिल उठाई, चल दिया, जयपुर। समय प्रातः 9 बजे का था। गनगौरी दरवाजे पर उसी दुकान पर पहुंचा। देखा 5-7 मरीजों से घिरे है। मैं भी बैठ गया। जब सबसे

निबट लिये तब मेरी तरफ मुखातिब हुए। पूछा, "आप कैसे आये ?" मैंने कहा "मरीज तो मैं भी हूं और एक थानेदार साहब जिनका नाम रामसिंह जी है उन्होंने आपसे मिलने का आदेश दिया है।" यह सुन कर दो तीन मिनट को चुप हो गये। फिर बड़ी मधुर भाषा में कहा, "आपका नाम ?" मैंने बताया। फिर फरमाया कि "जनाब यह बाजार है एक मरीज आता है एक मरीज जाता है। मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं। हां अगर आपको तकलीफ न हो तो सायंकाल घर तशरीफ लावें मुझे बड़ी खुशी होगी।" मैंने इजाजत माँगी और झालाने आ गया।

मेरी ड्यूटी रात्रि 12 बजे से थी। अतः मैं सायं 4 बजे हल्दियों के रास्ते में उस नौहरे पहुंच गया। आंगन (चौक) में हाथी बंधा था। पूछने पर एक आदमी ने कहा "ऊँ नाल से थे चला जाओ।" मैं नहीं समझा और खड़ा रहा। फिर उस आदमी ने कहा "डाक्टर साहब ऊपर रहै छै, थे ई नाल से चला जाओ।" तब समझ में आया कि यहां ज़ीने को नाल कहते हैं। ऊपर गया, आवाज लगाई। एक लड़की निकल कर आई और कहा कि अभी आते हैं। मेरा नाम पूछा और अन्दर चली गई। पूज्य डाक्टर साहब 3 मिनट बाद ही नीचे उतर कर आ गये। कमरा खोला, चटाई निकाल कर बिछाई और बैठे। वही थानेदार वाला सवाल किया कि "क्या करते हैं ?" मैंने बताया कि आजकल तो प्रातः स्नान कर मूर्ति के सामने कीर्तन करता हूं। फिर वे शान्त हो आँख बन्द करके बैठे तो मैं भी बैठा, 10 मिनट बाद आँख खोलकर पूछा, "कैसा लगा ? घबराये तो नहीं ?" पर मैंने जवाब दिया, "मैं तो असुर हूं, मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आया।" वे चुप थे, मैंने फिर अपने दिल की बात कही, "अगर आप कहें तो मैं आपको अपनी बात सुना दूं।" बोले, "हाँ हाँ जरूर कहिए।"

मैंने कहा, "मुझे एक बार स्वप्न आया कि मैं अपने मथुरा (जहां का मैं रहने वाला हूँ) के मकान में बाहर वाले आँगन में खड़ा हूं। ऊपर निगाह गई तो देखता हूं कि मुख्य गेट पर से दो बन्दर चले आ रहे हैं। सफेद बन्दरों को देखकर मैं चिल्लाने लगा और अपनी ताई को भी बुलाकर दिखाने लगा "देखो ताई जी, ये क्या है ?" वे बाहर आई, देखा तो मेरा घरेलू नाम लेकर कहने लगीं- "चुनिया, ये तो सतगुरु हैं।" यह सुनते ही मैंने प्रार्थना की कि मेरा चित बहुत डाँवाडोल रहता है, स्थिर नहीं

होता है। उन्होंने मुझे तीन पुड़ियाँ दीं और फिर गायब हो गये। मैं जग गया। तो साहब वे तीन पुड़िया स्वप्न की कहां गई, पता नहीं। पर धारणा दिल में कर ली कि जो सन्त महात्मा इन पुड़ियों का मतलब बतलायेंगे मैं उनको गुरुदेव मान लूंगा। वे मुस्कराये व एक टालू मिक्सचर पिला दिया, "जनाब यह तो ख्वाब है ख्वाब की बातें ख्वाब ही हैं। ख्वाब की बातें सच्ची नहीं भी होती हैं और यहां न कोई गुरु, न चेला है, यहाँ तो भाई चारा है।" यह सुन कर मैं खामोश रहा। थोड़ी देर बाद जाने की इजाजत चाही तो फिर मृदु वाणी में फरमाया, "कि भाई साहब आपसे मिलकर बड़ी तबियत खुश हुई, अगर हो सके तो जब फुरसत मिले आते रहा कीजिए। मैं तो दुकान के बाद घर पर ही रहता हूं।" मैं चला आया।

फिर रोजाना शाम को हाजिर होता व ध्यान में बैठता पर समझ में कुछ न आता। स्वप्न का हल न होने पर मुझे नहीं आना चाहिए था। पर आता रहा। यह कशिश (आकर्षण) क्यों थी ? मैं नहीं जान सका।

एक हफ्ता गुजर गया। एक दिन ध्यान कर चुके तो फरमाया, "भाई एक बड़े सन्त मुसलमानों में हुए हैं जिनका नाम मौलाना रूम था। उनका एक शेर याद आ गया-सुनाता हूं-

चश्म बंदो गोश बंदो लब्बो बंद ।
गर न बीनी सिर्रे हक बर मन् बि खंद ॥

मैंने कहा, "यह भाषा तो जानता नहीं, मेरे पल्ले तो कुछ न पड़ा।" आपने कहा "सीधा सा मतलब है कि आप अपनी आँखें बंद कर लें, कान बंद कर लें और ज़बान बन्द कर लें। फिर भी अगर आपको ईश्वर का दर्शन न हो तो मेरी हंसी उड़ा देना। भाई आँखें बन्द के माने ये नहीं कि आप आँखें बंद करके चलें और कहीं ठोकर खा कर चोट खा बैठे। फिजूल की बातें न सुने। जबान से फालतू बातें न करें। अगर देखें तो भगवान के दर्शन को आँखें उठें, पवित्र धार्मिक वार्तालाप सुनें, मुंह से परमपिता परमात्मा का, सन्तों का गुण गान करें और अगर इतने पर भी आपको ईश्वर का दर्शन न हो तो मेरी मजाक उड़ा देना, ये मानी हैं। मेरी समझ में तो आपके स्वप्न की यही तीन पुड़िया है।"

पूज्य डाक्टर साहब के ये तीनों मंत्र मुझे तसकीन दे गये। मेरे दिल में बैठ गये और मैंने फौरन ही उनके चरणों में नमन कर उनको गुरुदेव मान लिया और मेरा आना-जाना फिर घरेलू सा हो गया।

धन्य है उन थानेदार साहब ठाकुर रामसिंह जी को भी जिन्होनें मुझे इस जाल में ऐसा फंसाया कि इसमें से छूटने के बजाय ज्यादा से ज्यादा फंसा रहना चाहता हूं और गुरु महाराज से इसके लिए प्रार्थना करता हूँ। उन पूज्य ठाकुर रामसिंह जी महाराज जी साहब को लाख-लाख धन्यवाद है, ईश्वर करे उनकी आत्मा परम पूज्य गुरुदेव के चरणों में परम विश्राम पावें।

"भगवान ही पुलिस वालों से बचावे", इनका फाँसा निकल नहीं सकता।

यादें

उपसंहार
(भाग 7)

यादों का एक अन्य दृष्टिकोण भी है जिसका महत्व हमारे लेखों से और इस पुस्तक में छपे है उनसे भी कहीं अधिक है जो इस विषय में लिखे गए हैं। यहां यह विषय आप के सम्मुख रखने से पहले कुछ और चर्चा, जो इस सम्बन्ध में आवश्यक प्रतीत होती है, करना उपयुक्त समझते हैं।

गुरु शिष्य परम्परा के साधनों की जो पराकाष्ठा है, वह पूर्ण समर्पण की है। इसका अभिप्राय यह है कि जब शिष्यों को यह विश्वास हो जाता है कि कष्टों और झंझटों से बचने का तथा आध्यात्म मार्ग में अग्रसर होने का सारा साधन गुरु के चरणों में ही प्राप्त है, तो उसके समर्पण का अवसर आता है। यह समर्पण पूर्णरूप से हो जाये तो कहना ही क्या है, शिष्य के सारे कार्य इस लोक तथा परलोक के सुचारु रूप से पूरे हो जाते हैं। परन्तु हमारे देखने में यह आया है कि साधारणतः यह समर्पण आरम्भ में आंशिक होता है, तथा जैसे जैसे शिष्य पर गुरु के सत्संग का प्रभाव बढ़ता जाता है वैसे वैसे वह समर्पण भी बढ़ता और परिपक्व होता जाता है। अन्त में जैसे ही शिष्य की आस्था एवं विश्वास गुरु में सम्पूर्ण हुई कि समर्पण भी पूर्ण हो जाता है। इस अन्तिम सीढ़ी पर विरले ही पहुंच पाते हैं। परन्तु यदि उनकी आस्था डिगी नहीं और विश्वास बढ़ता गया तो पहुंच अवश्य जाते हैं। हमारी प्रार्थना है कि हमारे सत्संग से सम्बंधित प्रत्येक व्यक्ति इस सीढ़ी तक पहुँचे। ऐसी कृपा गुरुदेव हम सब पर करें।

जब हमारा यह ध्येय है कि पूर्ण समर्पण हो और हमारे सारे सांसारिक दुख दर्द नाश होकर हमें शान्ति प्राप्त हो, तो सोचिए इस कृपा का बदला हम गुरुदेव को क्या दे सकते हैं ? बिना गुरु कृपा के यह संभव नहीं है। समर्पण में तो हमारा सर्वस्व

ही अर्पण हो जाता है जिसमें हमारा मन, शरीर, मकान, जायदाद अथवा जो कुछ भी हमारा है, सब गुरुदेव का हो जाता है। आप जो कुछ भी गुरु की भेंट करते हैं वह प्रत्यक्ष रूप में लगता है कि आप उन्हें देते है। परन्तु जब आप उन्हें मन से सब कुछ दे चुके तो रुपया पैसा अथवा खाने पहनने और नित्य प्रति काम में आने वाली तथा अन्य वस्तुयें उन्हें भेंट देते हुए आप क्या सोचते होंगे ? यही कि आप दे रहे हैं। जब सर्वस्व समर्पण का ध्येय है तो आपके मन में उस समय इस प्रकार का कुछ विचार आना अनुचित है।

हम भण्डारे में जाते है। वहाँ कुछ प्रसाद में कुछ नकदी के रूप में भेंट करते हैं। असल में ऐसे हमारे लिए जो अवसरों पर जो भोजन, विश्राम सत्संग आदि के प्रबन्ध पर व्यय होता है, उसी की पूर्ति में ही तो हमारा यह योगदान होता है अथवा यों कहिये कि हमारे लिए जो सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं उसके बदले में कुछ दे देते हैं। जो सम्पन्न व्यक्ति हैं कुछ अधिक देते हैं, जो गरीब हैं कुछ कम दे देते हैं। किसी भी प्रकार से किया हुआ व्यय प्रबन्ध करने वाले (जिसके संचालक साधारणतः गुरु ही होते है) को मिल जाता है। आजकल तो भण्डारे का खर्च भी पूरा नहीं होता है, और यदि किसी के विचार से इसमें यदि कुछ अधिक भी पहुँच जाता है तो उसमें आपको हमें क्या आपत्ति होनी चाहिए ? सत्संग में जो हमें मिलता है उसका मूल्य रुपये में आँकना कठिन ही नहीं, हम तो इसे मूर्खता तक कहने को तैयार हैं। हमारी धृष्टता पर पाठक हमें क्षमा करें।

इतने लोगों को यह कहते सुना है कि अमुक गुरु रुपया इकट्ठा करने के लिए वार्षिक भण्डारा करते है। यात्रायें और सभायें आदि करते हैं। हमें तो उन्हें ऐसा दोष देने का कोई कारण नहीं दिखता। हम यह भी देखते हैं कि बहुतेरे ऐसे गुरु हैं जिनका आध्यात्म मार्ग से कोई सम्बन्ध नहीं है - केवल वाचक ज्ञान का प्रचार करना और अपनी उदर पूर्ति करना ही उनका कार्य है। इनसे भी सर्व साधारण का ध्यान थोड़े समय के लिए अच्छी अच्छी बातें सुनने में व्यय होता हैं। इन्हें सुन कर कुछ व्यक्ति अपनी बुरी आदतें छोड़ते भी हैं। कुछ तो लाभ है ही, आध्यात्मिक न सही मानसिक ही सही। इसके बदले में यदि उन्हें थोड़ा धन मिल जाता है तो क्या यह उनकी नेक कमाई नहीं है ?

जो हमें आध्यात्म देते हैं, मन को शान्ति देते हैं और हमें भगवान का सम्पर्क दिलाते हैं और जिन्हें हम मन से अपना सर्वस्व नहीं तो कुछ न कुछ अपर्ण करते ही हैं उन्हें यदि हम कुछ रुपये अथवा कोई उनके काम में आने वाली वस्तु भेंट देते है, तो हम उनके इस अनमोल उपकार का क्या कुछ बदला देते हैं ? उसका कोई मूल्य नहीं है। हम उनका बदला अथवा मूल्य दे ही नहीं सकते।

अब हम अपने मन्तव्य पर आते हैं, जिसके लिए हमें इतनी भूमिका बांधनी पड़ी है। यह आपके अनुभव में भी आया होगा कि हमें कोई अपना सम्बन्धी, मित्र अथवा अन्य कोई, ऐसी वस्तु लाकर देता है कि जो हमारे नित्यप्रति काम में आती है तो उस व्यक्ति की याद उस वस्तु से जुड़ जाती है। जब हम उस वस्तु को उपयोग में लाते हैं तो अकस्मात ही हमें अपने उस प्रियजन की याद आ जाती है। हमारे बच्चों में से एक ने हमें ऊनी आसन लाकर दिया जिस पर हम प्रतिदिन प्रातः सायँ पूजा के लिये बैठते हैं। उस आसन को देखते ही, हमें उस प्रियजन की याद आ जाती है। एक अन्य बच्चे ने हमें हाथ की घड़ी लाकर दी। जब हम बाहर निकलते और घड़ी को हाथ में लेते हैं तो हमें उस प्रियजन की याद आ जाती है। जो हमारे लिए एक अच्छा मजबूत जूता बनवा कर लाए जिसे नित्य प्रति पहनते हैं। हमें जूता पहनते समय उक्त प्रियजन की याद आ ही जाती है। यह सब बातें हम उदाहरण के रूप में लिख रहे हैं।

यदि आप अपने गुरुदेव की नित्य प्रति की आवश्यकताओं को तनिक ध्यान से देखें ओर उनमें से कोई भी एक या दो या अधिक वस्तुयें लाकर उन्हें भेंट करते हैं तो उन्हें उन वस्तुओं का उपयोग करते समय आपका ध्यान आना स्वाभाविक होगा। उनके याद करने के साथ साथ आध्यात्मिक अनन्य प्रेम की धारा आपकी ओर प्रवाहित होना (थोड़े समय के लिए ही सही) चालू हो जायेगी। अब इसका अन्तर देखिए। एक तो आप अपनी ओर से गुरुदेव की याद किसी न किसी प्रकार करते हैं, जिससे आपको आध्यात्मिक प्रेम की धारा मिलती है। दूसरे आपके गुरुदेव आपकी याद करते हैं, और उनकी इच्छा से वही प्रेम की धारा आपकी ओर बह निकलती है। इस दूसरी धारा में जो शक्ति है वह उस पहले प्रकार की धारा में नहीं हो सकती। इसमें हम उन महापुरुषों का दृष्टांत नहीं देना चाहेंगे

जिनका गुरुदेव से अनन्य प्रेम हो चुका है और हर समय ही उनकी याद में मस्त रहते हैं। उनका और उनके गुरुदेव का सम्पर्क तो पक्का हो चुका, जो हमारा नहीं हुआ और हम अभी इस प्रयास में लगे हुए हैं। अतः यह सारी बातें उन महापुरुषों के लिए नहीं लिखी जा रही है। हम जैसे मध्यम श्रेणी के सत्संगी हैं जो गुरु कृपा प्राप्त करने में लगे हुए हैं उन्हीं की जानकारी के लिए यह सब लिखना हमारा अभिप्राय है ।

गुरुदेव की सेवा हमें तन मन धन से करनी चाहिए। तन की सेवा करने वालों को लोग सराहते देखे गये हैं। परन्तु धन से जो सेवा करता है वह सर्व साधारण की आँखों में खटकने लगता है। होना तो नहीं चाहिये परन्तु ऐसा होता अवश्य है। लोग कहते हैं इसे अपने पैसे का घमण्ड है, गुरुदेव को पैसे से खरीदना चाहता है, इत्यादि, इत्यादि। हमें ऐसी बात कहना तो क्या ध्यान में भी नहीं लाना चाहिए। यदि हम ऐसा करते हैं तो हम अभी अध्यात्म मार्ग में रहने योग्य नहीं हुए हैं।

वैसे तो धन की सेवा तन और मन की सेवा से नीचे दरजे की है परन्तु धन से पहले बहुत सी आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं, इसलिए ही इनका महत्व है। संतों की निजी आवश्यकताएं बहुधा ऐसी होती ही नहीं जिनके लिए उन्हें अपने निजी साधनों से अधिक की आवश्यकता हो। फिर ईश्वर की कृपा से उनके थोड़े साधनों में भी ऐसी ऋद्धि (वृद्धि या बरकत) होती है कि उन्हें सहायता की आवश्यकता ही नहीं रहती। यदि आप उन्हें धन भेंट करते हैं तो वह आपके तथा अन्य सत्संग में आने वालों की सुविधाओं पर खर्च कर दिया जाता है। सन्तों की आर्थिक तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति का भार भगवान पर रहता है और भगवान कृपा से वह किसी प्रकार अपने आप ही पूरा होता रहता है। वे आपकी भेंट आदि के सहारे नहीं चलते, यह सबको भली भांति समझ लेना चाहिए।

हमारे परम पूज्य श्रीमान लाला जी महाराज तो अपनी थोड़ी सी आय में से अपने शिष्यों तथा अन्य व्यक्तियों को, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दे देते थे, आप स्वयं कष्ट पा कर भी ऐसा करते थे।

जब उपर लिखी अवस्था परिपक्व हो जाती है जिसमें हम सब गुरुदेव की

याद में लगे रहें ओर गुरुदेव को भी हमारा ध्यान हर समय रहे, तो एक प्रकार से हमारे गुरुदेव में लय होने की अवस्था आ जाती है। इसमें हम अपने आपको तो भूल जाते हैं और गुरुदेव का अस्तित्व ही हमें याद रहता है। या यूं कहिये कि गुरुदेव हैं और हम नहीं। हमारे शरीर रंग रुप सब गुरु रूप हम हैं ही नहीं। सूफी सन्त अपनी भाषा में इसे "फनाफिल शेख" कहते हैं। गुरु में लय भी यही अवस्था है। शब्दों का केवल अन्तर है। यह बहुत ऊँची अवस्था है। जिसे मिल जाये उसका बहुत बड़ा सौभाग्य है।

विशेष स्थितियों में गुरु भी अपने शिष्यों में लय हो जाते हैं। यह स्थिति करोड़ों अरबों में कहीं एक को ही सौभाग्य से प्राप्त होती है। ऐसे शिष्य असाधारण संस्कार वाले या यों कहिये कि इस आध्यात्म के कार्य के लिए ही सृष्टा के आदेश से अवतरित होते हैं। ऐसे शिष्य तो आरम्भ (बचपन) से ही अनोखी छटा वाले होते हैं और भगवन्नाम का प्रचार भी उनके द्वारा बहुत अधिक होता है। सूफी सन्तों में ऐसे महापुरुष को मुराद अर्थात संपूर्ण गुरुमुख कहते है जबकि अन्य साधारण शिष्य मुरीद कहलाते हैं। यहाँ शेख (गुरु) फनाफिल्मुरीद अर्थात शिष्य में लय हो जाते है। हमारे गुरुदेव श्रीमान लाला जी महाराज की यही स्थिति थी अर्थात उनके गुरुदेव उनमें लय हुए थे।

इसके आगे जहां तक हमारी जानकारी है एक ही सीढ़ी बाकी रह जाती है वह है ईश्वर में लय जिसे सूफी लोग फना फिल्लाह कहते है तथा हिन्दी में "ईश्वर में लय" कहिए। वैसे तो हमारा भी मान्यताओं के अनुसार ऐसा ही है। परन्तु ईश्वर में लय गुरुदेव में लय हो जाने पर ईश्वर में हमारा भी लय होने पर गुरुदेव का कार्य समाप्त हो जाता है। उनका शिष्य के प्रति सारा कर्त्तव्य (जिम्मेदारी) पूर्ण हो जाती है और वे भी अपने आप को शिष्य और ईश्वर के बीच में से हटा लेते हैं।

गुरुदेव हम सब का कल्याण करें।

यादें

परिशिष्ट

(भाग 8)

(जून 1970 में राम सन्देश में प्रकाशित)

प्रेम

पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥

प्रेम प्रेम संसार में कोलाहल मचा हुआ है- जिधर देखो इसी प्रेम की कहानी ? मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक पत्रिकाओं में रात-दिन प्रकाशित होने वाले इन उपन्यासों में, चित्रपटों में, रेडियो में तथा टी०वी० के प्रसारण में मित्रों के वार्तालाप में, यहां तक कि संत समाज में भी प्रेम की ही चर्चा मिलती है । आखिर प्रेम किस पक्षी का नाम है ?

भगवान की सृष्टि में प्रेम का बोलबाला है । प्रेम न हो तो संसार के बहुतेरे काम पड़े रह जावें । परिवार के सदस्य एक दूसरे के प्रेम में बंधे अपना सारा कार्य सुचारु रूप से करते रहते हैं- माता का सन्तान पर निःस्वार्थ प्रेम होता है । पति पत्नी का प्रेम एक दूसरे के लिए सब कुछ न्योछावर करने तक होता है । भाई-भाई का प्रेम, बहन भाई का प्रेम इन सबके सैकड़ों उदाहरण हमें मिलते हैं । प्रेम एक दूसरे के प्रति आकर्षण मात्र है ? यह क्षणिक भी, अस्थाई भी और स्थाई भी होता है । आप यह सब समझते हैं । उदाहरण की आवश्यकता नहीं है । सांसारिक प्रेम में ही आपको ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिसमें प्रेमियों ने अपनी जानें दे दी हैं । निराश प्रेम में ऐसा होना साधारणतः कहानियों में, फिल्मों में दिखाया ही जाता है ।

सच्चा प्रेम आप किसे कहेंगे ? यदि तनिक भी स्वार्थ मन में हो तो हम

सच्चाई से हट गए। निःस्वार्थ प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है। परन्तु प्रेम का आदर्श तो ऐसा होना चाहिए कि जिसकी ऊँचाई को कोई दूसरा पहुँच ही न सके। आपने मीराबाई का पद पढ़ा होगा :-

ऐसे बरको का बरूँ जो जीवै और मर जाय ।
बर पाउँ सुन्दर सांवरो, जो चुड़लो अमर हो जाय ॥

प्रेम जैसी उँची शक्ति यदि हम सांसारिक बातों में व्यय करें तो हम यह कहेंगे कि हमने स्वर्ण मुद्रा के बदले में एक मिट्टी का दिया खरीद लिया। इस शक्ति को उस वस्तु के पाने में लगाइये-जिसका कोई मोल नहीं दे सकता-जिसके पाने के बाद संसार की अच्छी से अच्छी वस्तु भी तुच्छ लगती है। जिसे पाने पर किसी अन्य वस्तु के पाने की इच्छा ही बाकी नहीं रह जाती-

सब कुछ खुदा से मांग लिया तुमको मांग कर,
उठते नहीं हैं हाथ मेरे, इस दुआ के बाद ।

जिसके मिलने पर मन शान्त और निश्चल हो जाता है- इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं- परम शान्ति स्थाई रूप से विराजती है और हम कृतकृत्य हो जाते हैं।

कहना सरल है- करना कठिन है। अपना आपा खोना पड़ता है-सरल बात नहीं है। त्याग तो करना ही पड़ेगा। त्याग भी कैसा ? सर्वस्व त्याग।

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मर्तबा चाहे,
कि ज़र्रा ख़ाक में मिलकर, गुले गुलजार होता है।

पहले देना पड़ेगा-फिर सब कुछ मिल सकता है। सोच लीजिए-सौदा है फायदा दीखे-सौ बार समझ में आये-तो कीजिए :-

ये तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं ।
सीस उतारे भूई धरे, तब पैठे यहि माहिं ॥

प्रेम न बाड़ी उपजे, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जो चहे, सीस देय लै जाय ॥

हमारे शास्त्रों में भगवान को पाने के दो मार्ग बतलाये गए हैं-एक ज्ञान का दूसरा प्रेम का। भगवान कृष्ण ने गीता में ज्ञान मार्ग को भलीभाँति समझाया है परन्तु अन्त में प्रेम, भक्ति और समर्पण द्वारा ही अर्जुन को अपने ध्येय तक पहुंचाया है। सन्तों का मत तो प्रेम ही का मत है। वे प्रेम करते हैं- प्रेम करना सिखलाते हैं और इसी प्रेम की शक्ति को जागृत करके उसे पराकाष्ठा तक पहुँचा देते हैं। भक्त का काम बन जाता है।

सद्गुरु का जब तक हमें असल रूप समझ में नहीं आता, तब तक उनसे निश्छल प्रेम होना स्वाभाविक नहीं है। उनका ये रूप भी उन्हीं की कृपा से समझ में आता है। हमारे पूज्य श्रीमान चाचा जी महाराज (परमसन्त) महात्मा रघुवर दयाल जी की एक सूक्ति हमें इस विषय में याद आती है :-

झुट्टल खेले सच्चल होय,
सच्चल खेले बिरला कोय।

पहले आरम्भ में झूठा प्रेम ही कीजिए, आपको रस मिलेगा। फिर धीरे-धीरे उसमें परिपक्वता आती जायेगी-सच्चाई आती जायेगी । और जैसे ही उसमें परिपक्वता आई, गुरु कृपा तुरन्त मिली। आपको दिव्य दृष्टि मिली आपको साक्षात का दर्शन गुरु में हो गया । अब आप कृतकृत्य हो गए । आपके रास्ते की सारी बाधायें समाप्त हो गई आपको ऐसा प्रेम हुआ कि खाते पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते कभी नहीं भूलता। आप इसे प्रेम कहें या जो चाहें कहिए, ये तो जो है सो है।

इस अमूल्य प्रेम के लिए हम क्या दे सकते हैं- हमारे पास है ही क्या देने को। मन तो दे ही दिया-तभी यह अमूल्य रत्न-प्रेम हमें मिला। हमने तो सब कुछ दे दिया। हमारे पास रह क्या गया ? हम ही नहीं रह गये, जब मन ही हमारा नहीं रहा तो शरीर तो है ही क्या। वह तो मन से भी पहले गया। अब मैं नहीं रहा-

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, या में दो न समाहिं॥

इस स्थिति की हम कामना करें। सब कुछ अर्पण करके भी इस स्थिति को प्राप्त करने के प्रयत्न में तन-मन से जुट जावें। मेरी भी यही गुरुदेव से सविनय प्रार्थना है कि मुझे और आप सबको यह स्थिति प्रदान करें। उनकी थोड़ी सी कृपा से ही यह प्राप्त हो सकती है। प्रेम करें और प्रेम में नित्य प्रति बढ़ोतरी करते जायं तथा उनकी कृपा पर पूर्ण भरोसा रखते हुए उनकी दया और कृपा की कामना सदा करते रहे। तभी काम बन सकता है।

जब लगि तन नाही गलत, मन नाहीं मर जात।
तब लगि मूरति श्याम की, सपनेहु नाहिं लखात॥

यादें

परिशिष्ट

(भाग 9)

लिखित आज्ञा पत्र

दीक्षा का विषय सदा ही कुछ संदेहात्मक अथवा विवादास्पद रहा है। इस विषय में मुझे जो कुछ जानकारी पूज्य भाई साहब परम सन्त डा॰ श्री कृष्ण लाल साहब द्वारा मिली वही मैंने अपने लेख 'यादें' में पहले सन 1978 में (जब मेरे लेख राम सन्देश में प्रकाशित हुए) दीं तथा फिर 'यादें' को पुस्तक रूप देते समय भी उसमें कोई फेरबदल नहीं किया।

परन्तु मेरी निजी जानकारी (अनुभव) के अनुसार हमारी इस परम्परा में कई सन्त ऐसे हुए हैं कि जिनके पास लिखित आज्ञा पत्र नहीं थे अथवा नहीं हैं। कुछ के विषय में तो आज्ञा पत्र का होना अथवा नियमानुसार मौखिक आज्ञा होने का भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। परन्तु उनके सन्त होने तथा उन पर पूर्ण रूप से गुरु कृपा होने में भी किसी प्रकार का संशय नहीं है। वे गुरु का कार्य करते रहे, दीक्षा भी देते रहे और अब भी कर रहे हैं। गुरु कृपा से उनका कार्य उन लिखित आज्ञा प्राप्त संतों के ही अनुरूप चला और चल भी रहा है। इन संतों द्वारा हमारे सत्संगी भ्राताओं को यथेष्ट लाभ होना भी देखने में आ रहा है।

यह सब देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि लिखित आज्ञा पत्र होना अथवा सन्तों की मंडली द्वारा सामूहिक सभाओं में आज्ञा दिया जाना अनिवार्य नहीं है। यह तो आवश्यक फिर भी है ही कि यदि उन पर गुरु कृपा है तो सब कुछ है अन्यथा कुछ भी नहीं। संभव है इसमें यह भेद हो कि जो सन्त सद्गुरु की पदवी पाए हुए हों वे अपने शिष्यों को सत्यपद तक पहुंचाने में समर्थ हों तथा दूसरे गुरु, शिष्यों को सत्य

पद तक न पहुंचा सकते हों। परन्तु हमारे पास तो कोई साधन अथवा मापदण्ड नहीं है जिससे हम इस विषय में निर्णय लेने में सहायता ले सकें। अतः हमें यह सब अपने भाग्य, भगवान की मर्जी आदि पर ही छोड़ना पड़ेगा और पूर्ण आस्था के साथ अपना काम करते रहना ही उचित लगता है, इसके अतिरिक्त कर ही क्या सकते हैं।

गुरु पदवी

पुस्तक के भाग 4 में "सतगुरु की पदवी" शीर्षक में हम लिख आए हैं कि इजाजत चार प्रकार की होती है। इनमें पहली इजाजत पूजा कराने की, अभ्यास में थोड़ी प्रगति हो जाने पर दे दी जाती है, जिससे अपने साथ अन्य अभ्यासियों को पूजा कराने की योग्यता तथा अधिकार मिल जाता है परन्तु नये आगन्तुकों को अभ्यास बतलाने का अधिकार नहीं मिलता। यह अधिकार अभ्यास पक्का हो जाने पर सतगुरु द्वारा दे दिया जाता है। इससे नवागन्तुकों को अभ्यास बतलाने और उन्हें सत्संग परिवार में शामिल करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

मुझे पहला अधिकार तो कभी सन् 1928 में परम संत श्रीमान चच्चा जी (महात्मा श्री रघुवरदयाल जी) साहब कानपुर द्वारा दे दिया गया था। फिर नवागन्तुकों को अभ्यास बतलाने का अधिकार इसी पुस्तक के भाग 4 में "इजाजत" शीर्षक में वर्णन अनुसार सन् 1934 में मिला। मैं इसी के अनुसार कार्य करता रहा। तीसरा अधिकार इजाजत बैत अर्थात् "दीक्षा देने वाला" होता है जिसके साथ उत्तरदायित्व भी बंधा रहता है इसी कारण मैंने इसे कभी नहीं चाहा कि मुझे मिले। अभ्यासियों की सेवा निस्संकोच करता रहा। और जो दीक्षा योग्य हुए उन्हें दिल्ली में परम सन्त महात्मा डा॰ करतार सिंह जी द्वारा दीक्षा दिलवाता रहा। इन संत ने मेरे सभी प्रस्तुत किये अभ्यासियों को सहर्ष दीक्षा देना स्वीकार किया।

सन 1975 में मेरा गाजियाबाद रहना हुआ। तब मैं पूज्य भाई साहब परम संत सतगुरु महात्मा डा॰ श्यामलाल जी के घनिष्ठ सम्पर्क में आया। इन संत से मेरा परिचय तो सन् 1930 से भी पहले का था और फतेहगढ़ भण्डारों तथा कानपुर में मिलते रहते थे।

अतः इसके बाद जो सत्संगी मेरे पास दीक्षा के योग्य हुए उन्हें इन संत के सम्मुख प्रस्तुत किया। आपने उस समय कहा कि इन्हें (अर्थात मुझे) इजाजत है फिर ये स्वयं दीक्षा क्यों नहीं देते ? परन्तु उन्होंने उस समय तो उन्हें दीक्षा दे दी। बाद में उन्होंने महात्मा दिनेश कुमार, जिन्हें मेरे ही अनुरोध पर आपके द्वारा दीक्षा दी गई थी, को कहा कि इन्हें (अर्थात मुझे) इजाजत है और इन्हें मेरे पास इजाजत मिलने की तारीख भी नोट की हुई है।

सन् 1987 में मैंने पुनः एक सत्संगी सज्जन को आपके सम्मुख दीक्षा के लिए प्रस्तुत किया तब फिर आपने मुझसे पूछा तुम दीक्षा क्यों नहीं दे देते ? मैं निरुत्तर तो हुआ परन्तु मैंने पुनः निवेदन किया इस समय तो आप इन्हें दीक्षा देवें, मेरे विषय में बाद में निश्चय कीजिएगा। और उन्होंने दीक्षा दे दी।

कुछ समय बाद लगभग 1990 में मेरा सम्पर्क परम सन्त महात्मा रवीन्द्रनाथ जी से हुआ जो श्रीमान कानपुर वाले चच्चा जी महाराज के पौत्र हैं और अपने पिताजी परम सन्त सतगुरु श्रीमान महात्मा मुंशी राधामोहन लाल जी द्वारा पूर्णाधिकार प्राप्त संत हैं, मेरे पुनः सम्पर्क में आए। पुराने सम्पर्क का नवीनीकरण हो गया। जब ये संत जयपुर पधारे तब आपने भी मुझसे यही प्रश्न किया, आप दीक्षा क्यों नहीं देते ? आपको बाबूजी (उनके पूज्य पिताजी) ने इजाजत दी है।

मुझे इस विषय में कुछ याद नहीं था कि कब इजाजत दी गई। अतः मेरे अनुरोध पर आपने कहा कि रेकार्ड देखकर बतलाऊँगा मुझे और आपको इजाजत साथ साथ दी गई है। बहुत खोज करने पर उन्होंने मुझे बाद में लिखा कि सन 1964 में बसंत भण्डारे पर इजाजत दी गई है। मैं श्रीमान चच्चा जी महाराज के आदेशानुसार रोज की डायरी लिखा करता था पुरानी डायरी निकाल कर देखी तो सन् 1964 में कानपुर बसंत भण्डारे पर मैं पहुंचा ही नहीं। मुझे विशेष रूप से पूज्य भाई साहब ने इसी के लिये बुलाया भी था परन्तु मुझे कुछ कारणों से राज्य सेवा से अवकाश प्राप्त न हो सका। सन् 1965 में बसंत भण्डारे में मेरा जाना डायरी में मिला और उसमें इजाजत बैत का उक्त भण्डारे में दिया जाना भी लिखा हुआ मिला। 5 फरवरी 1965 बसंत पंचमी को शाम की पूजा की भरी सभा में मुझे यह आज्ञा

प्रदान की गई थी। इस सभा में और परम अधिकार प्राप्त संत भी थे। महात्मा रवीन्द्रनाथ जी को गुरु पदवी सन् 1964 के भण्डारे में ही प्रदान की गई। मैं भी उसमें उपस्थित होता तो मुझे भी इसी वर्ष यह इजाजत मिल गई होती। मैंने उसी समय यह घटना भी डायरी में नोट की और फिर उसे बिल्कुल भूल गया।

उस समय 1965 तक मैं यह नहीं समझता था कि संत सद्गुरु की पदवी जिसे सूफी भाषा में इजाजत ताअम्मा कहते हैं उसके अतिरिक्त इजाजत बैत भी होती है और यह सब जानने का प्रयत्न भी नहीं किया। कुछ समय बाद जब पूज्य भाई परम संत महात्मा डा० श्री कृष्णलाल जी के सम्पर्क में आया तभी साधकों की इजाजत के विषय में पूरी जानकारी मिली। उस समय मैं अपनी इजाजत बैत को पूर्णतया भूल चुका था और इतने दिनों लगभग 30 वर्षों तक भूला ही रहा।

पूज्य भाई साहब परम संत डा० श्यामलाल जी का सन् 1987 में स्वर्गवास हो गया। वे संत सतगुरु की पदवी पर थे और मुझसे बड़े भी थे। वे स्वयं भी मुझे इजाजत दे सकते थे। मुझे उनके कहने पर विश्वास न करने का कोई कारण ही न था। परन्तु क्योंकि मैं इस उत्तरदायित्व से बचा ही रहना चाहता था मैंने पूज्य भाईसाहब के अनुरोध का भी प्रभाव नहीं लिया और न पूज्य भाई साहब से इस विषय में बात ही की। यह अवश्य ही मेरी भूल और लापरवाही थी जिसका मुझे खेद है।

इसके बाद सन् 1993-1994 में भी मेरे पास कुछ सत्संगी अभ्यासी दीक्षा के योग्य हुए। उन्हें गाजियाबाद सरदार साहब के भण्डारों में भी ले गया परन्तु इन सभी ने मेरे अतिरिक्त किसी अन्य से दीक्षा लेना स्वीकार नहीं किया, मैं उस समय तक यही समझता था कि मुझे दीक्षा का अधिकार नहीं है।

संयोगवश इसी वर्ष 1995 के आरम्भ में ही महात्मा श्री रवीन्द्रनाथ जी की कृपा और संपर्क से उन्हीं के द्वारा मुझे अपनी दीक्षा देने की इजाजत की याद दिलाई गई और जिसकी मेरी स्वयं की लिखी डायरी से पुष्टि भी हो गई। अतः मैं सभी ओर से बंध गया और मेरे लिये सिवाय इसके कि दीक्षा का कार्यारम्भ करूँ कोई विकल्प नहीं रहा। इसी आधार पर मैंने दीक्षा का कार्य 1995 के फतेहगढ़

भण्डारे से लौटने के बाद से आरम्भ कर दिया। फिर 1996 के आरम्भ में बसन्त पंचमी (25-1-96) पर जब मैं कानपुर-महात्मा रवीन्द्रनाथ जी के पास पहुँचा तो उन्होंने अपने पूज्य पिता जी-परम सन्त महात्मा मुंशी राधामोहन लाल जी द्वारा ता॰ 18 फरवरी 1965 को उर्दू में लिखित आदेश की एक प्रति प्रदान की। इसमें लिखा है कि :-

"इस साल जिन्हें मुकम्मिल इजाजत दी गई उनके नाम लिखे जाते है।

1. बाबू रघुवीर प्रसाद श्रीवास्तव
2. बाबू हरनारायण जयपुर
3. दादा करणी सिंह
4. बाबू राम प्रसाद माथुर
5. आँ अजींम (अर्थात श्री रवीन्द्रनाथ जी)

पूज्य भाईसाहब के स्वयं के लिखे इस आज्ञा पत्र को देखकर इस विषय में पैदा होने वाली सारी शंकाएँ दूर हो गई। हमारे सभी सत्संगियों को यह ज्ञात होगा कि परम संत महात्मा श्री राधामोहन बाबू साहब कानपुर निवासी श्रीमान महात्मा रघुवर दयाल साहब (चच्चा जी महाराज) के द्वितीय पुत्र थे और अपने सद्गुरु परम संत महात्मा अब्दुल ग़नी ख़ाँ साहब (भोगाँव) द्वारा दीक्षित तथा पूर्णाधिकार प्राप्त संत थे जिन्हें श्रीमान चच्चा जी महाराज द्वारा भी संत सद्गुरु की पदवी प्रदान की गई थी।

नाम

एक और विषय है गुरु द्वारा दीक्षा के समय नाम देना। गुरु जो नाम देते हैं, शिष्य जीवन पर्यन्त स्मरण करता रहता है। इसे गुरुमंत्र भी कहते हैं। यह नाम अथवा गुरुमंत्र सच्चे सन्त भी देते हैं और बनावटी संत भी देते हैं। सच्चे सन्त तो अवश्य ही अपने शिष्यों को संभालते तथा निगहबानी करते रहते हैं। परन्तु बनावटी सन्त केवल नाम देने अथवा गुरुमंत्र कान में फूंक देने के अतिरिक्त अपना कोई

उत्तरदायित्व नहीं निभाते। असल में उनमें इसकी योग्यता ही नहीं होती। अपनी वार्षिक तथा अन्य प्रकार की भेंट अवश्य लेते और आशीर्वाद देते हैं पर उनका कोई मानसिक अथवा आध्यात्मिक संबंध अपने शिष्यों से नहीं होता।

सूफी सन्तों में हमें यह नाम अथवा गुरुमंत्र देने की परम्परा नहीं मिली। ये जब किसी को शिष्य बनाते है तब पहले तो उससे यह इकरार कराते हैं कि उसने भगवान के नाम पर अपना दिल (जीवन) दिया। फिर उसे अपने गुरुओं के सुपुर्द करते हैं और उनसे जोड़ देते हैं और उन गुरुओं के उत्तराधिकारी के नाते उसे शिक्षा देते रहते हैं। शिक्षा में पहला कार्य उस शिष्य के हृदय में ईश्वर के सूक्ष्म नाम का प्रवेश करा देना होता है। चाहे तो इसे नाम अथवा गुरुमंत्र कह लीजिये। यह नाम वर्णात्मक न होकर केवल ध्वन्यात्मक होता है जिसे जिह्वा से नहीं रटा जाता वरन हृदय से ही उच्चारण होता रहता है। इसे ओम्, राम, अल्लाह कुछ भी कह लीजिये।

इस ध्वन्यात्मक शब्द (नाम) को आरम्भ में हृदय की गति से जोड़ कर तथा सतगुरु को सदा सर्वदा साथ रखकर जपने का अभ्यास किया जाता है तो स्थूल मंडल पीछे छूट जाते हैं तथा सूक्ष्म मंडलों में आगे ही आगे प्रवेश होता चला जाता है और अभ्यास परिपक्व होता चला जाता है। सूक्ष्म मंडलों को ही पार करने में कठिनाई होती है। परन्तु गुरु कृपा मिलती रहे तो पार अवश्य हो जाता है। और फिर कारण के मंडलों में पहुंच कर साक्षात्कार का अधिकारी बन जाता है। यहां तक भी बिना गुरु कृपा तथा सहायता के पहुँचना संभव नहीं है। गुरु की यही महिमा है। अतः बनावटी गुरुओं से हमें सावधान रहना चाहिये और अपना समर्पण बहुत सोच समझकर ही करना चाहिये। शीघ्रता में नहीं।

गुरु भगवान सब का कल्याण करें।

पारिवारिक वंशावली

परम संत समर्थ सतगुरु महात्मा
श्री रामचन्द्रजी (लाला जी) महाराज

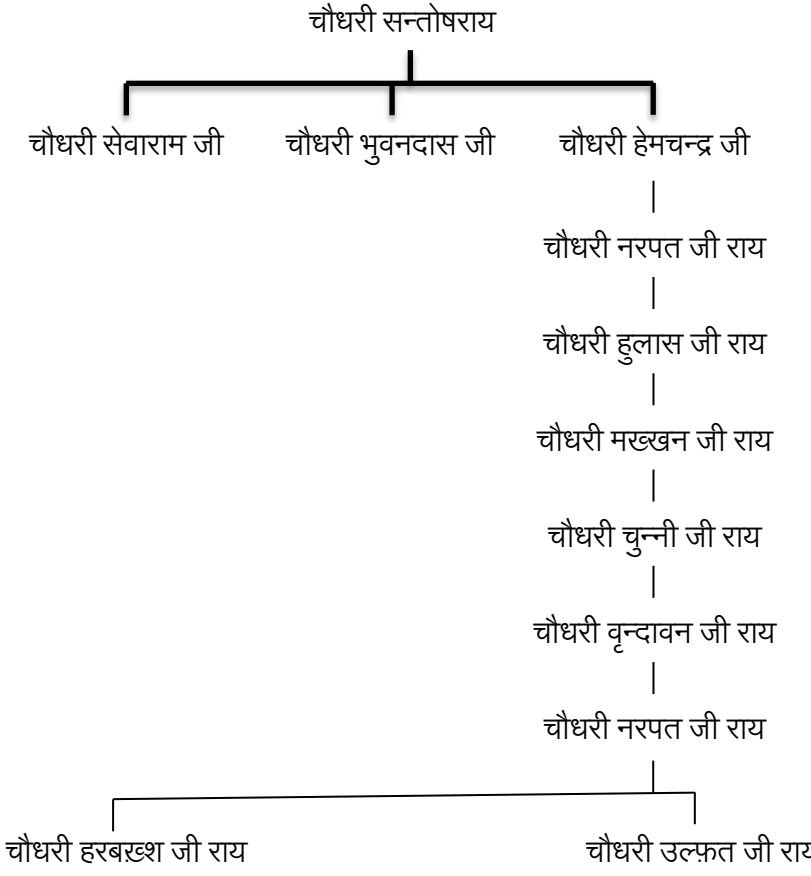

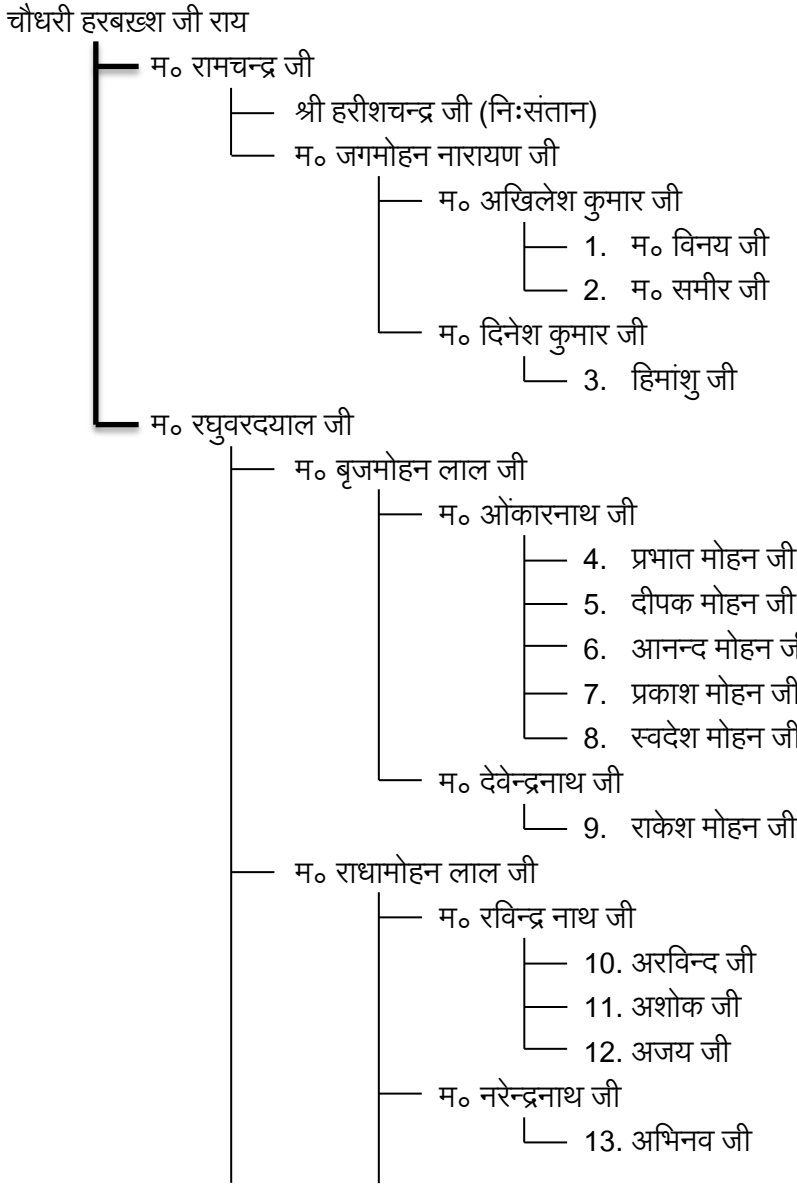
चौधरी हरबख़्श जी राय
म० रामचन्द्र जी
श्री हरीशचन्द्र जी (निःसंतान)
म० जगमोहन नारायण जी
म० अखिलेश कुमार जी
1. म० विनय जी
2. म० समीर जी
म० दिनेश कुमार जी
3. हिमांशु जी
म० रघुवरदयाल जी
म० बृजमोहन लाल जी
म० ओंकारनाथ जी
4. प्रभात मोहन जी
5. दीपक मोहन जी
6. आनन्द मोहन जी
7. प्रकाश मोहन जी
8. स्वदेश मोहन जी
म० देवेन्द्रनाथ जी
9. राकेश मोहन जी
म० राधामोहन लाल जी
म० रविन्द्र नाथ जी
10. अरविन्द जी
11. अशोक जी
12. अजय जी
म० नरेन्द्रनाथ जी
13. अभिनव जी

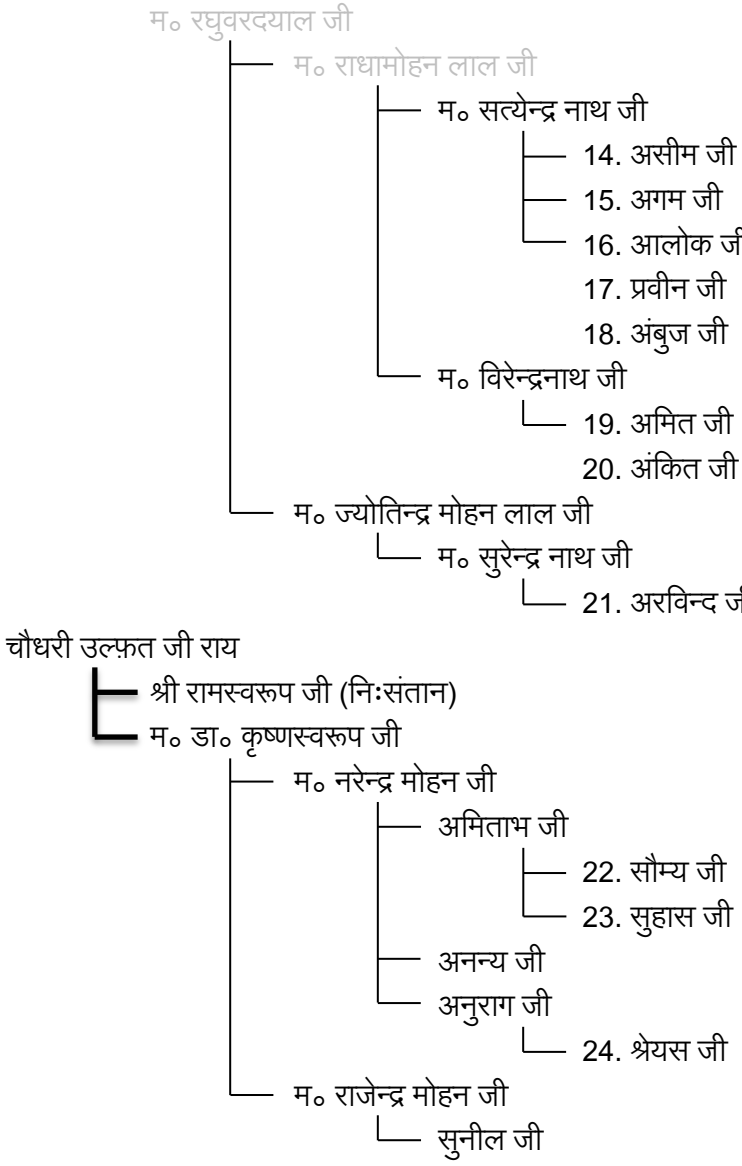

- म॰ रघुवरदयाल जी
  - म॰ राधामोहन लाल जी
    - म॰ सत्येन्द्र नाथ जी
      - 14. असीम जी
      - 15. अगम जी
      - 16. आलोक जी
      - 17. प्रवीन जी
      - 18. अंबुज जी
    - म॰ विरेन्द्रनाथ जी
      - 19. अमित जी
      - 20. अंकित जी
  - म॰ ज्योतिन्द्र मोहन लाल जी
    - म॰ सुरेन्द्र नाथ जी
      - 21. अरविन्द जी

- चौधरी उल्फ़त जी राय
  - श्री रामस्वरूप जी (निःसंतान)
  - म॰ डा॰ कृष्णस्वरूप जी
    - म॰ नरेन्द्र मोहन जी
      - अमिताभ जी
        - 22. सौम्य जी
        - 23. सुहास जी
      - अनन्य जी
      - अनुराग जी
        - 24. श्रेयस जी
    - म॰ राजेन्द्र मोहन जी
      - सुनील जी

आध्यात्मिक वंशावली

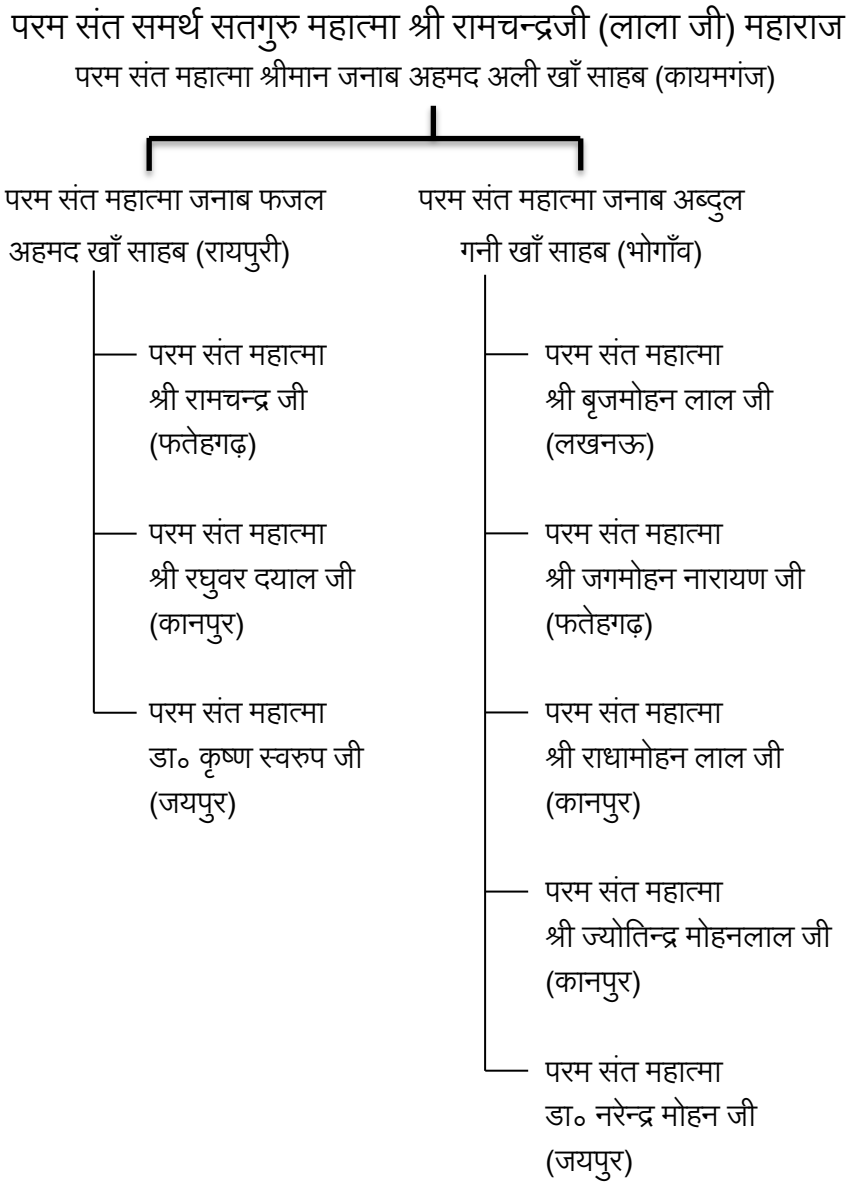
परम संत समर्थ सतगुरु महात्मा श्री रामचन्द्रजी (लाला जी) महाराज
परम संत महात्मा श्रीमान जनाब अहमद अली खाँ साहब (कायमगंज)
परम संत महात्मा जनाब फजल अहमद खाँ साहब (रायपुरी)
परम संत महात्मा श्री रामचन्द्र जी (फतेहगढ़)
परम संत महात्मा श्री रघुवर दयाल जी (कानपुर)
परम संत महात्मा डा॰ कृष्ण स्वरुप जी (जयपुर)
परम संत महात्मा जनाब अब्दुल गनी खाँ साहब (भोगाँव)
परम संत महात्मा श्री बृजमोहन लाल जी (लखनऊ)
परम संत महात्मा श्री जगमोहन नारायण जी (फतेहगढ़)
परम संत महात्मा श्री राधामोहन लाल जी (कानपुर)
परम संत महात्मा श्री ज्योतिन्द्र मोहनलाल जी (कानपुर)
परम संत महात्मा डा॰ नरेन्द्र मोहन जी (जयपुर)

महात्मा श्री रामचन्द्रजी

- महात्मा श्री श्याम बिहारी लाल जी (फतेहगढ़)
- महात्मा डा॰ चतुर्भुज सहाय जी (मथुरा)
- महात्मा डा॰ श्री कृष्ण लाल जी (सिकन्दराबाद)
- महात्मा श्री मदन मोहन लाल जी (शाहजहाँपुर)
- महात्मा डा॰ श्याम लाल जी (गाजियाबाद)
- महात्मा श्री सेवती प्रसाद जी (कासगंज)
- महात्मा ठाकुर रामसिंह जी (जयपुर)
- महात्मा श्री प्रभुदयाल जी (कानपुर)
- महात्मा श्री भवानी शंकर जी (उरई)
- महात्मा श्री शिवनारायण दास जी गांधी (कानपुर)
- महात्मा श्री रामचन्द्र जी (शाहजहाँपुर)
- महात्मा श्री हीरा लाल जी जोशी (रावटी, रतलाम)
- महात्मा डा॰ हरनारायण जी सक्सेना (जयपुर)

प्रस्तुत पुस्तक में वर्णित सब सन्तों के अतिरिक्त लेखक समय के सभी सन्तों के सम्पर्क में आये हैं।

आध्यात्म मार्ग में "यादों" के माध्यम से अपने ध्येय को पहुँचना कैसे सरल हो जाता है यह सब आपको इस पुस्तक में मिलेगा।

लेखक की अन्य दो पुस्तकें अँग्रेज़ी भाषा में है जिनका विवरण अँग्रेज़ी भाषा में ही निम्नलिखित है।

THE SECRET OF REALISATION

The technique of the Saints as to how they raise the soul from the low gross levels to the highest levels of consciousness and liberate the poor soul from the bondage of the intricate net of maya, get him a glimpse of the reality and ultimately arrange his permanent merger in the ocean of immortal eternal peace, tranquility and bliss.

SANT MAT DARSHAN

Written by Param Sant Satguru Mahatma
Sri Ramchandraji of Fatehgarh
Translated into English by
Dr. H. N. Saksena

What is Misery and how can it be avoided? What is Pleasure and how can it be obtained IN THIS VERY LIFE.

(Revisio: 18j13)